UNIVERSAL LIBRARY
OU_182463
UNIVERSAL LIBRARY

यशस्वी भोज

हमारा अन्य नाट्य-साहित्य

विष-पान	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१॥)
स्वप्न-भंग	,,	१॥)
उद्धार	,,	२)
छाया	,,	१)
शपथ	,,	२॥)
शतरंज के खिलाड़ी	,,	१॥)
शक-विजय	उदयशंकर भट्ट	३)
अ-पूर्व बंगाल	बी० वी० वरेरकर	१।)
समाज के स्तम्भ (इब्सन)	सीताचरण दीक्षित	२)
आधुनिक एकांकी	विजय चौहान	२)
समर्पण	जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'	१।॥)
वितस्ता की लहरें	लक्ष्मीनारायण मिश्र	१॥)
मानव प्रताप	देवराज 'दिनेश'	२)
हर्षवर्द्धन	वैकुण्ठनाथ दुग्गल	१।)
उर्मिला	पृथ्वीनाथ शर्मा	१)
सुभद्रा-परिणय	वीरेन्द्रकुमार गुप्त	२)
पग-ध्वनि	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	१।)
शक्ति-पूजा	बी० मुखर्जी 'गुंजन'	१।)
शान्ति-दूत	देवदत्त 'अटल'	१।)
बादलों के पार	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	३)
आदिम युग	उदयशंकर भट्ट	३)
विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य	उदयशंकर भट्ट	३)
मनु तथा अन्य एकांकी	लक्ष्मीनारायण मिश्र	२॥)
एकांकी-समुच्चय	जयनाथ 'नलिन'	३)
सफर की साथिन	रामसरण शर्मा	१।॥)
रेल के डिब्बे	अरुण, एम. ए.	१॥)
ऐतिहासिक दृश्य (सचित्र)	श्यामलाल	१॥)
बूढ़े बच्चे (सचित्र)	रामचन्द्र तिवारी	१॥)
गधे	हबीब तनवीर	१।)
गार्गी के बाल-नाटक	परितोष गार्गी	१।)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

यशस्वी भोज

[ऐतिहासिक नाटक]

लेखक
देवराज दिनेश

ओर से

१९५५
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६
मूल्य एक रुपया आठ आने

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

Checked 1963

लेखक की अन्य रचनाएँ

अंतर्गीत	(गीत-संग्रह)	१॥)
रावण	(नाटक)	२)
मानव प्रताप	(नाटक)	२)

आत्माराम एण्ड सं॰, दिल्ली-६

Checked 1969 (सर्वाधिकार सुरक्षित)

मुद्रक
रामलाल पुरी
यूनिवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस
काश्मीरी गेट दिल्ली-६

किरण
और
मिट्ठू
को

सादर समालोचनार्थ

लेखक-परिचय

२२ जनवरी, सन् १९२२ को आपका जन्म श्री ज्ञानचन्द सब्बरवाल के घर हुआ। आपके पिता पश्चिमी पंजाब के अन्तर्गत जलालपुर जट्टाँ के रहने वाले थे। किन्तु वह अधिकतर व्यापार के सिलसिले में उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत अलीगढ में रहते थे। वहाँ के ग्राम्य-वातावरण में ही दिनेश का लालन-पालन हुआ।

यह अभी एक वर्ष के ही थे कि इनकी माता की मृत्यु हो गई। १३ वर्ष तक आते-आते पिता ने भी इस बालक का साथ छोड़ दिया। उनकी भी मृत्यु हो गई। उसी समय बड़े भाई घर छोड़कर सन्यासी हो गये। दिनेश तब फिर से पंजाब आकर बस गये। ऐसी परिस्थितियों मे दिनेश को पढना-लिखना सब छोड़ना पड़ा।

जीवन के विविध कटु अनुभवों को अपने आँचल मे समेटे हुए यह बालक जीवन पर आगे बढ़ा! परिस्थितियों ने इनके हृदय मे सोये हुए कलाकार को जगाया। छोटी अवस्था से ही आप कविता करने लगे थे।

अब तक आपकी चार पुस्तकें छप चुकी है—'अन्तर्गीत', 'रावण', 'मानव-प्रताप', 'जीवन और जागृति'। पर जीवन और जागृति अप्राप्य है, कविताओं और एकांकियो के संग्रह प्रेस मे है, जो शीघ्र ही छपकर आपके सम्मुख आयेंगे। आपको नौकरी का बन्धन स्वीकार न होने से, जीविका के लिए भी लेखनी का आश्रय ही लेना पड़ता है। आप रेडियो और रंगमंच दोनो के कुशल अभिनेता है।

प्रकाशक

भूमिका

महाराज भोज पर नाटक लिखने का मेरा विचार चार-पाँच वर्ष पूर्व बना। मैंने अनुभव किया कि इस यशस्वी नरेश पर नाटक के क्षेत्र में किसी ने लेखनी नहीं उठाई। मैंने यह सोच सामग्री इकट्ठी करनी शुरू कर दी। लगभग एक वर्ष मेरा इसी खोज-बीन में लग गया। भोज सम्बन्धी साहित्य और इतिहास पढ़ने पर मैंने यह अनुभव किया कि वास्तव में ही इस महान् चरित्र पर नाटक लिखना कठिन है! काव्य लिखना सरल! क्योंकि उनकी जीवन की घटनाओं का क्रम बड़ा विशृंखल है! उनके पारिवारिक जीवन के विषय में इतिहास मौन है!

छोटी-छोटी किंवदन्तियों और वाक् चातुरी की लघु कथायें उनके जीवन को मधुर मुखर बना रही हैं। किन्तु बहुत सोचने पर भी काव्य की इच्छा नहीं हुई।

मैं दृश्य काव्य के द्वारा ही भोज की प्रजा-वत्सला दानशीलता, वीरता, विद्वता, छद्मवेश में दीन-दुखियों की खोज-खबर लेना, शिक्षा-प्रचार और उसके निर्माण-कार्यों का जनता पर सीधा प्रभाव देखना चाहता था।

वह एक सुयोग्य शासक था! उस वर्ग के व्यक्ति भी उसके चरित्र से कुछ न कुछ प्राप्त करेंगे ही!

और आज से तीन वर्ष पूर्व मैंने इस नाटक को लिखना प्रारम्भ किया। लिख ही रहा था कि मुझे अचानक शिमला जाना पड़ गया, वहाँ मैं इसे साथ ले गया, और समाप्त कर दिया। सोचा, चलो दिल्ली चल-कर ही टाइप करवाऊँगा। रामलाल जी पुरी छापने का वायदा कर ही चुके थे। आशा थी कि शीघ्र ही छपकर यह नाटक साहित्य के क्षेत्र में आ जायेगा। किन्तु भाग्य को कुछ और ही स्वीकार था! रेल-यात्रा करते हुए अचानक ही जो मेरी आँख खुली तो देखा कि मेरा चमड़े का

बड़ा बैग गायब है ! बैग और उसमे रखे सामान के गम होने का मुझे दुख नही था । किन्तु भोज ! वह भी उसी में था !

विवश, सन्तोष करना पड़ा ! फिर शीघ्र ही लिखने की इच्छा नहीं हुई । दिन बीतते गये, जीवन-क्रम चलता रहा !

सैलानी और घुमक्कड़ आदत, अपना सारा जीवन ही इसी तरह बीता है ! सज्जनो की कृपा से भविष्य में भी इस आदत के हटने के कोई आसार नही दीख रहे। सुबह बो, दुपहर में उगा, और शाम को खा—यह है अपना जीवन-क्रम ! ऐसे मे किसी बड़ी चीज को लिखने का साहस बहुत ही कम होता है !

एकांकी, लेख और कवितायें अवश्य लिखी जाती है ! यह भी न करूँ तो गृह त्यागकर उत्तराखण्ड जाना पड़े !

बीस दिन पूर्व की बात होगी, गाड़ी में सफ़र कर रहा था ! लोग किस्से व कहानियाँ कह रहे थे ! राजा भोज की चर्चा भी चल निकली । मै भी कुछ सुनने-सुनाने में लगा । तभी एक ने पूछा—"कहाँ राजा भोज और कहाँ गँगुआ तेली !" इस कहावत का क्या अर्थ हुआ !

मैने बतलाया, यह कहावत बिगड़ गई है, राजा भोज ने हैहयवशी राजा गांगेयदेव और तैलपवशी जयसिह तैलप को जीता था । तब यह कहावत बनी—"कहाँ राजा भोज और कहाँ गांगेयदेव व तैलप !" लेकिन इसका रूप बिगड़ते-बिगड़ते गागेय गँगुआ बन गया और तैलप तेली ।

अभिप्राय यह कि उस सफर मे बहुत देर भोज-सम्बन्धी चर्चा होती रही ! और भोज पर नाटक लिखने का विचार फिर बल पकड़ गया !

एक दिन बाद ही पुरी साहेब से भेट हो गई, बोले—'क्या हाल हैं तुम्हारे भोज के ?" अनायास ही तो कह बैठा—"लिख रहा हूँ !"

और वास्तव मे ही उस शाम सब काम छोड़कर मै भोज लिखने पर जुट गया !

भोजदेव स्वयं विद्वान और विद्वानों का आदर करने वाले थे ! उनके रचित ज्योतिष, विज्ञान, काव्य और व्याकरण के ग्रन्थ मिलते है ।

२५० वर्गमील में विन्ध्य की पहाड़ियों में भोपाल (**भोजपाल**) के दक्षिण-पूर्व में एक विशाल झील बनवाई थी ! जिसे पन्द्रहवीं शताब्दी में माँडू के सुल्तान होशंगशाह ने तुड़वाया था । चित्तौड़ के किले का प्रसिद्ध शिव-मन्दिर भी इसी का बनवाया हुआ है, जिसे लोग **अदब्द जी** (**अद्‌भुत जी**) या भोकल जी का मन्दिर कहते हैं ! तब इसका नाम "त्रिभुवन नारायणदेव" का मन्दिर था । त्रिभुवननारायण भोज का ही दूसरा नाम था !

धार में संस्कृत के अध्ययन के लिए भोजशाला नाम की एक पाठशाला थी, जिसे 'शारदा-सदन' या 'सरस्वती-सदन' नाम से भी पुकारा जाता था ! शारदा-सदन मे सरस्वती की एक विशाल मूर्ति उसने बनवाई थी, जो अब ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दन मे रक्खी है । वह निर्माता था ! उसके राज्य मे वास्तु-कला का विकास हुआ। उसकी विजयों से सम्बन्धित दान-पत्र मिले हैं । वह योद्धा था !

इतिहासकारों का कथन है कि उसी के भय से सोमनाथ-विजय के बाद सुल्तान महमूद रास्ता बदलकर कच्छ और सिन्धु के रास्ते से लौटा था ! उसे सोमनाथ मे ही समाचार मिला था कि मालव-नरेश भोज मेरा रास्ता रोके पड़े है !

उसके समय मे भुक्ति जिले को और विषय तहसील को कहा जाता था ! सूबेदार के लिए राष्ट्रपति शब्द था, जो मुझे आधुनिक दृष्टि से अनुकूल नही लगा । क्षत्रप भी सूबेदार को ही कहते थे ! महत्तर (**गाँव का मुखिया**) और पटेल शब्द भी गुजरात निकट होने से चल निकला था । वैसे पटेल को पट्टीकल कहते थे !

मैने इस नाटक को रगमंच के दृष्टिकोण से लिखा है ! सरलता से स्थान बदले जा सकते हैं ।

एक गाथा है कि भोज ने एक निर्धन पण्डित की विदुषी कन्या से उसकी योग्यता पर रीझकर विवाह किया था—इसी के आधार पर मैने ज्योत्स्ना की कल्पना की है !

आशा है कि यह नाटक पाठकों और दर्शकों को पसन्द आयेगा।

बाद में श्रीयुत विश्वेश्वरनाथ रेउ का धन्यवाद करता हूँ; क्योंकि उनकी ऐतिहासिक पुस्तक राजा भोज से मुझे सहयोग मिला है !

१० अक्तूबर, १९५५
७७५९, कस्साबपुरा
सदर बाजार, दिल्ली

देवराज दिनेश

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

भोजदेव	.	मालव नरेश
बुद्धिसागर	:	मालव के महामात्य
धनपाल	:	वृद्ध राजकवि
हरिहरदास	:	ग्रामीण विद्वान, शिक्षक
पटेल	:	ग्राम के मुखिया
भीमा	:	दस्युराज
भास्कर भट्ट	:	भोजदेव के मित्र, राजकवि
रोहक	:	भोजदेव के कोषाध्यक्ष
गोविन्द भट्ट	:	मण्डप दुर्ग छात्रावास के अध्यक्ष
वसुसेन	.	प्रधान शिल्पी
कुलचन्द्र	:	मालव के सेनापति
नरपति, गोपाल	:	ग्रामीण युवक
अग्निमित्र	:	दण्डपाशिक
कमलश्वर	:	क्षत्रप

महत्तर, प्रहरी इत्यादि

स्त्री-पात्र

ज्योत्स्ना	:	हरिहरदास की पोती, बाद में भोज की रानी
हेमवती	:	हरिहरदास की पत्नी
सुनन्दा	:	ज्योत्स्ना की सखी
विजया	:	राजनर्तकी
कुसुमवती	.	राजमाता

क्रम

	पृष्ठ
पहला अंक	१—५१
पहला दृश्य . . .	१
दूसरा दृश्य	१३
तीसरा दृश्य	२८
चौथा दृश्य	३९
पाँचवाँ दृश्य	४५
दूसरा अंक	५२—८३
पहला दृश्य	५२
दूसरा दृश्य . . .	६०
तीसरा दृश्य . .	६८
तीसरा अंक	८४—११२
पहला दृश्य	८४
दूसरा दृश्य	९३
तीसरा दृश्य	१००
चौथा दृश्य . . .	१०७

यशस्वी भोज

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान—पण्डित हरिहरदास के ग्राम मे उनकी पाठशाला का चबूतरा, जिसे आज विशेष समारोह के कारण सजाया गया है। सामने की दीवार के साथ एक ओर तख्त पड़ा है, जिस पर मसनद इत्यादि रक्खे है। दीवार के बीच मे दरवाजा है, जो घर के भीतर जाने का प्रवेश-द्वार है। राजाधिराज भोज शाकम्भरी-विजय के उपरान्त अपने देश मे लौटे है। उनके लौटने पर सीमान्त की देशवासी ग्रामीण जनता अपना उल्लास प्रगट करती हुई सम्राट् का स्वागत कर रही है। बहुत से ग्रामों के मुखियों ने मिलकर यहाँ स्वागत-समारोह किया है। जनता के सहयोगार्थ और सम्राट के स्वागतार्थ राजधानी धार से कोषाध्यक्ष रोहक, वृद्ध कवि धनपाल और मण्डप दुर्ग के छात्रावास के अध्यक्ष गोविन्द भट्ट भी आये हुए है।

इस स्थान से कुछ ही दूरी पर सम्राट का शिविर पड़ा है। नपथ्य में विजयसूचक रणवाद्य बज रहे है। नेपथ्य के दूसरी ओर परम भट्टारक की जय के नारे लग रहे है। तभी रंगमंच पर हरिहरदास धनपाल और गोविन्द भट्ट बाते करते हुए आते है।]

गोविन्द : यहाँ के वातावरण में कितना उल्लास है महाकवि, जनता अपने हृदय के उद्‌गार इन जयघोषों के द्वारा प्रगट कर रही है। जनसमूह उमड़ा पड़ रहा है।

धनपाल : यह सम्राट की सर्वप्रियता का द्योतक है। भोजदेव के गुण, उनकी मानवता और सहृदयता ने मुञ्ज और सिंधुराज की कीर्तिलता को भी जनता के हृदय से विस्मृत-सा कर दिया है। मैंने मुञ्ज और सिन्धुराज दोनों का शासनकाल देखा है। दोनों ही कला-पारखी और योद्धा थे, पर भोजदेव के समान नहीं।

गोविन्द : वास्तव में ही मालव भूमि धन्य हो गई ऐसे रसिक सम्राट को पाकर।

धनपाल : (**हँसकर**) वाह ! यह रसिक शब्द अत्यधिक उपयुक्त रहा। परम भट्टारक कला और रण दोनों में रस लेते है। इन परमार नरेशों का शासन-काल भी मालव के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों से सुशोभित रहेगा।

हरिहर : जहाँ सम्राट स्वयं अपनी प्रजा का विशेष ध्यान रखे वह राज्य क्यों न सुखमय हो, जब प्रजा सम्राट से अपनी पीडा-गाथा कह सकती हो, सुनने पर सम्राट उचित न्याय करते हो। वह राष्ट्र स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है।

[नेपथ्य में राजाधिराज भोज की जय, कुछ ही देर बाद सम्राट भोज, उनके अंतरंग मित्र कवि भास्कर भट्ट और रोहक का प्रवेश। उपस्थित लोग शीश झुकाकर स्वागत करते है]

हरिहर : परम भट्टारक की जय हो !

भोज : हूं (प्रसन्न मुद्रा मे) तो आप लोगों ने उत्सव का आयोजन किया है।

हरिहर : हाँ सम्राट ! आयोजन क्या अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट किये हैं ।

धनपाल : सीमांतवासी प्रजा की आकांक्षा थी कि सम्राट के दर्शन किये जाएँ, उनसे कुछ बातें की जाएँ ।

हरिहर : (अत्यधिक विनम्रता से) और हमारा सौभाग्य है कि सम्राट ने यह अवसर हमें दिया ।

भोज : यह तो हमारा ही सौभाग्य है कि इस प्रान्त की प्रजा से भी हम कुछ देर बातें कर सकेंगे । अच्छा ! आओ तो फिर घूमकर देखा जाय ।

धनपाल : अभी कुछ देर यहाँ बैठना होगा देव ! नागरिकों ने नृत्य और संगीत का आयोजन किया है जिसके लिए यह जगह उन्होंने चुनी है । आप विराजिये ।

भोज : (**बैठते हुए**) सुन्दर, बहुत सुन्दर, वास्तव में महाकवि ! कला और जीवन अन्योन्याश्रित है । युद्ध हुआ, शत्रु पराजित हुआ, रणवाद्य ही हमारे कर्ण-कुटीरों को रस देते रहे। अच्छा है इतने दिनों के उपरान्त कला का यह रूप भी हमारे सामने आये ।

हरिहर : सम्राट ! मुझे क्षणिक अवकाश दिया जाए । मैं अभी श्री-चरणों में उपस्थित हुआ ।

भोज : अवश्य (**पण्डित हरिहरदास जाते हैं**)

गोविन्द : यात्रा तो मंगलमय रही देव !

भोज : हाँ आचार्य ! आप लोगों का आशीर्वाद और शुभकामनायें साथ हों, तब यात्रा के मंगलमयी होने में संशय ही क्या हो सकता है (**साँस भरकर**) बस एक ही दुखप्रद घटना घटी, प्रधान सेनापति की मृत्यु, मृत्यु तो अनेकों की हुई । फिर वीरों की ऐसी मृत्यु पर दुःख प्रकट करना जँचता

भी नहीं, किन्तु सुयोग्य महबलाधिकृत का निधन राज्य की बहुत बड़ी क्षति है ।

धनपाल : जीवन और मरण तो वैसे सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के साथ लगे हुए हैं, किन्तु प्रियजन अपनी स्मृतियाँ छोड़ ही जाते हैं ।

भोज : उस दिन तो ऐसा लगा उनकी मृत्यु के क्षण जैसे मालव राष्ट्र को पराजय का मुख देखना पड़ेगा । शत्रु का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया था । उनके उल्लास की सीमा नहीं थी । हमारी सेना के पाँव उखड़-से चुके थे ।

धनपाल : तब फिर क्या हुआ देव !

भास्कर : होना क्या था, सम्राट ने स्वयं महाबलाधिकृत का कार्य अपने कन्धों पर लिया । मैं परम भट्टारक के साथ ही था, उस समय सम्राट की वाणी देवाधिदेव महादेव के जय-घोष के साथ गूँज उठी, सम्राट की शंखध्वनि दशों दिशाओं में छा गई, मालवों में फिर से नव उत्साह का संचार हुआ (**रुककर**) कितना भव्य दृश्य था वह । रथ पर आरूढ़ सम्राट कार्तिकेय के समान दीखते थे । लग रहा था जैसे देव कार्तिकेय अपने रथ पर आरूढ़ हो युद्ध-क्षेत्र में अवतरित हुए हों ।

धनपाल : तब तो यह युद्ध वास्तव में ही दर्शनीय होगा, तुम धन्य हो कवि भास्कर, तुमने अपने नेत्रों से उस युद्ध को देखा ।

भोज : (**हँसते हुए**) देखा ही क्या, युद्ध किया ! इसकी वीरवाणी द्वारा पूर्वजों का शौर्य वर्णन हमारे उत्साह को बढ़ाता रहा । (**भास्कर की पीठ पर थपकी देते हुए**) इस विजय का श्रेय पर्याप्त मात्रा में भास्कर को मिलना चाहिए ।

भास्कर : मुझे ? मुझे क्यों सम्राट ? यह आपकी अनुकम्पा है। प्रथम बार मैंने युद्ध को इतने निकट से देखा । भीषण युद्ध हुआ, चौहान राजा वीर्यराम को मारकर सम्राट ने महाबलाधिकृत की मृत्यु का प्रतिशोध लिया, विजय हमारे हाथ रही।

भोज : **(सोचते हुए गोविन्द भट्ट से)** हाँ, विजय तो हमारे हाथ रही किन्तु कितने ही साथी हम से बिछुड़े, कितनी बड़ी संख्या में जनसमूह का विनाश हुआ। इस बात से उत्पन्न अवसाद हमें उद्विग्न किए हुए है। युद्ध करना पड़ा, पर वास्तव मे युद्ध से मुझे अरुचि है ।

रोहक : आप कवि है। यह आपका कविरूप बोल रहा है। इसमें उद्विग्न होने की कोई बात नही देव ! सम्राट के रूप में आप सोचे। आप देखेंगे कि आपने जो कुछ किया, उचित किया । युद्धों की परम्परा मानव-समाज को पर्याप्त अन्तर्द्वन्द्व के उपरांत डालनी पड़ी होगी परिस्थितियों से बाध्य होकर।

भोज : कुछ भी समझो, किन्तु यह तो मानना ही पड़ता है कि राष्ट्र-निर्माण के कार्यो में इससे अत्यधिक बाधा आती है।

बुद्धिसागर : किन्तु राष्ट्र की रक्षा का प्रश्न भी तो परमावश्यक है। हम यह युद्ध नही चाहते थे किन्तु शत्रुओ की दृष्टि में इस भावना का अर्थ यह हुआ कि हम निर्बल हैं । यह समझ उन्होंने हमारी सीमान्त-निवासी प्रजा पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये। प्रजा की पुकार तो राजा को सुननी ही होगी।

धनपाल : महामात्य ठीक कहते है देव ! दूसरों के द्वारा कई बार युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी जाती है । अनेक बार

शान्ति और मानवता की रक्षा के लिए युद्ध करने पड़ते हैं। तथागत युद्ध के अनुयायी सम्राट कनिष्क और हर्ष तक को अनेक युद्ध करने पड़े।

गोविन्द : फिर आप तो देवाधिदेव शिव के अनुयायी हैं जिन्होंने स्वयं मानवता की रक्षार्थ त्रिपुर का संहार किया था। इसलिए देव ! यह अवसाद बन आपके हृदयाकाश पर नहीं छाने चाहिएँ।

बुद्धिसागर : फिर आप तो जानते ही हैं। आपकी आज्ञा से दो बार उनके पास शान्ति-सन्धि भेजी गई। दोनों बार उसे ठुकरा दिया गया, इसके अतिरिक्त और आपके पास कोई उपाय नहीं था, देव !

भोज : (**बात का विषय बदलते हुए**) कहो आचार्य ! आपके मंडल दुर्ग के समाचार कैसे हैं ? कितने छात्र हैं आपके छात्रावास में ?

गोविन्द : एक सहस्र के लगभग होंगे देव ! इस वर्ष ग्रामीण छात्र बहुत अधिक आए हैं।

भोज : शुभ है ! शिक्षा का प्रकाश ग्रामों तक पहुँच रहा है। इस कार्य को हमें दत्तचित्त होकर करना है आचार्य ! इसके द्वारा स्वयं ही जनता के चरित्र का विकास होगा।

गोविन्द : आपकी अनुकम्पा चाहिए राजाधिराज !

भोज : मैं इन कार्यों में सदैव आपके साथ हूं। मेरे हृदय में बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ पल रही हैं। मुझे उन्हें पूर्त्त रूप देना है ; बस आप सब लोगों के सहयोग की आवश्यकता है। सुनो आचार्य ! प्रतिवर्ष मेधावी स्नातकों की एक विशेष श्रेणी बनाये, जिन्हें अध्यापन-कला की शिक्षा-दीक्षा दी जाय ताकि वह ग्रामों में विद्यालय खोलकर शिक्षा और

कला का प्रचार कर सकें। उन विद्यालयों के अध्यापकों व उनके परिवार के भरण-पोषण का प्रबन्ध यथाशक्ति राज्य की ओर से हो जायगा।

बुद्धिसागर : आपकी आज्ञा चाहिए, देव !

भोज : मैं मालव में तक्षशिला और नालन्दा की तरह एक विश्व-विद्यालय स्थापित करना चाहता हूं। उसे विश्व-नागरिकों के लिए शिक्षा और कला का केन्द्र बनाना चाहता हूँ। उज्जयनी और धार इसके मुख्य स्थल होंगे।

रोहक : आपकी कामनायें फलवती होंगी देव !

[तभी हरिहरदास का कुछेक ग्रामीणों के साथ प्रवेश, प्रणाम इत्यादि के उपरांत लोग इधर-उधर बैठ जाते हैं]

हरिहर : आज्ञा हो देव ! हम ग्रामीण अपनी कला का कुछ प्रदर्शन करें।

भोज : अवश्य ! इसी की तो हम उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

[हरिहरदास का इशारा पाकर दीवार के मध्य का द्वार खुलता है। कलाकार बाहर आते हैं, एक जोड़ा अपना नृत्य उपस्थित करता है, नृत्य के साथ झाँझ, मृदंग इत्यादि बज रहे हैं। नृत्य के कुछ देर बाद नर्तक-नर्तकी गीत भी गाते हैं]

गीत

नर्तक : **तू मेरे जीवन की आशा मैं तेरा विश्वास**

नर्तकी : **मैं तेरे जीवन की करुणा तू मेरा उल्लास**

× × ×

मैं तेरी जीवन-सरिता की प्रिय मदभरी तरंग

नर्तक : मैं तेरे भोले-भाले मानस की सुखद उमंग

नर्तकी : मैं तेरी पगली पिक साजन तू मेरा मधुमास

नर्तक : तू मेरे जीवन की करुणा मैं तेरा उल्लास

× × ×

नर्तकी : देख साजन तरु पर बैठा एकाकी पक्षी मौन

नर्तक : पूछ रहा है मुझ से तेरे संग खड़ी है कौन

नर्तकी : बतलाओ इसको इस छोटे जीवन का इतिहास

दोनों : मैं तेरे जीवन की आशा तू मेरा विश्वास

[नृत्य और गीत की समाप्ति पर हर्षसूचक ध्वनियाँ]

भोज : मनहर ! अत्युत्तम ! (रोहक की ओर देखकर) कोषाध्यक्ष !

रोहक : आज्ञा देव !

भोज : इन कलाकारों को अपने साथ शिविर में ले जाओ और हमारी ओर से उचित भेट दो । इसके साथ ही इस उत्सव में आये हुए प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ हमारी ओर से भेट मिलनी ही चाहिए ।

रोहक : अभी आज्ञा का पालन हुआ जाता है सम्राट !

हरिहर : राजाधिराज ! बड़ी कठिनता और प्रबन्ध से हमने जनता समूह को रोक रक्खा है । जनता आपके दर्शनों के लिए उतावली हो रही है । आप से कुछ बातें करना चाहती है, कुछ बातें सुनना चाहती है ।

भोज : हूं, हम भी तो वही सोचते हैं कि अपनी प्रजा के रागरंग मे सम्मिलित हों । ऐसा करो महामात्य ! आज रात को

उचित प्रकाश का प्रबन्ध करके हमारे शिविर के सम्मुख एक विशाल सभा का आयोजन करो। वहीं पर हम सबके सामने अपने विचार रखेंगे और वहाँ पर उपस्थित लोगों के विचार सुनेंगे। (**हरिहरदास की ओर देखकर**) क्या नाम है तुम्हारा ?

हरिहर : हरिहरदास।

भोज : (**हँसते हैं**) उत्तम ! हरि और हर दोनों के दास ! (**हँसकर**) लाभ में ही हो। दोनों में से एक भी प्रसन्न हो गया तो समझो कि स्वर्ग में तुम्हारे लिए स्थान सुरक्षित है।

[**सब हँसते हैं**]

धनपाल : किन्तु इसमें एक आशंका है देव !

भोज : वह क्या ?

धनपाल : लक्ष्य एक हो। पथ एक हो। साधना साथ हो, सफलता कहीं नहीं गई। एक ही स्थल तक पहुंचने के लिए दो पथों का अवलम्ब ! (**हँसकर**) भटकने की आशंका है !

भोज : (**हँसते हैं**) फिर क्या हुआ कहीं न कहीं तो पहुंचेगा ही। इन्द्र अपने द्वार बन्द कर लेगा तो क्या हुआ ? यम के द्वार तो सब के स्वागतार्थ खुले हैं !

[**सब हँसते हैं**]

हरिहर : परम भट्टारक ! मृत्यु के पश्चात् की कौन जाने ? स्वर्ग और नरक दोनों का दृश्य इस पृथ्वी पर ही दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रतिदिन उनके कहीं न कहीं दर्शन हो जाते हैं।

भोज : (**गम्भीर होकर**) सुशिक्षित जान पड़ते हो।

हरिहर : आपकी अनुकम्पा है स्वामी ! किन्तु स्वर्ग और नरक शिक्षा का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह तो जीवन

के दो रूप है । जो समयानुसार मानव के सम्मुख आते ही है । अपराध क्षमा हो देव !

भोज : निश्चिन्त होकर अपने हृदय की बात कहिए ।

हरिहर : राष्ट्र में ऐसे भी व्यक्ति है देव, जिन्हे कठिन परिश्रम के उपरान्त भी भरपेट रोटी नहीं मिलती और ऐसे भी है जो हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते है । दास-दासियाँ आगे-पीछे घूमते है ।

भोज : (**गम्भीर हो जाते है**) अनुभव करता हूँ । चेष्टा कर रहा हूँ कि मानव-समाज के इस अन्तर को दूर कर सकूँ । देखो, कहाँ तक सफलता मिलती है । (**रुककर**) उत्सव मे डोंडी पिटवा दो कि आज रात को सब हमारे शिविर के सम्मुख उपस्थित हो । कोषाध्यक्ष, इन कलाकारों को अपने साथ ले जाओ ।

[**रोहक कलाकारों के साथ जाते है**]

हरिहर : देव ! उत्सव नहीं देखियेगा ?

भोज : कुछ समय उपरान्त ! अभी अपने इन साथियों से विचार-विमर्श करना है ।

हरिहर : तब मुझे आज्ञा हो । मै अपने कार्य का प्रबन्ध करूं ।

भोज : अवश्य !

[**पंडित हरिहरदास जाते है, साथ मे दूसरे उपस्थित व्यक्ति भी अभिवादन करते हुए प्रस्थान करते है । रगमंच पर सम्राट के पास धनपाल, गोविन्द भट्ट और भास्कर रह जाते है**]

भोज : देखो भास्कर ! आज हमें जन-समुदाय का अपने यहाँ स्वागत करना है । सबके सम्मुख उस नाटिका का प्रदर्शन करो जो शाकम्भरी-विजय के उपरान्त महोत्सव मनाते

हुए सैनिकों द्वारा हमें दिखलाई गई थी । जाओ, अभी जाकर अपना कार्य आरम्भ कर दो ।

भास्कर : मैं स्वयं आप से यही कहने वाला था । (**प्रस्थान**)

गोविन्द : परम भट्टारक ! पंडित हरिहरदास बहुत वर्ष तक मेरे साथ ही उज्जयनी में शिक्षा पाते रहे हैं । भाग्यवश पिता की मृत्यु के पश्चात् शिक्षा अधूरी छोड़कर इन्हें अपने गृह लौटना पड़ा ।

भोज : वह तो उनकी बातों से ही ज्ञात होता है ।

गोविन्द : इन्होंने यह पाठशाला खोल रखी है । अगणित छात्र यहां पर प्रारम्भिक शिक्षा पाते हैं । इनकी कामना थी कि सम्राट इसको कल किसी समय देखें ।

भोज : कह देना, कल प्रातः उनकी पाठशाला का हम निरीक्षण करेंगे । बालकों में भी कुछ मनोविनोद रहेगा । (**सोचते हुए**) पर कल नहीं फिर कभी सही । हां, यदि हरिहरदास की आकांक्षा हो तो हम उन्हें राज-सभा में स्थान दे सकते हैं ।

गोविन्द : आपकी सहृदयता से परिचित होते हुए मैंने स्वयं उनसे यह बात की थी ।

भोज : फिर क्या कहा उन्होंने ?

गोविन्द : बोले, मैं चला गया तो यहां का कार्य अधूरा रह जायगा, हृदय को एक सन्तोष-सा है । सीधा सादा ग्राम्य जीवन है । रूखी-सूखी खाकर भी यहां सन्तुष्ट हूँ ।

भोज : सन्तोषी जीव है । अच्छा कभी हम स्वयं उनसे बातें करेंगे । यहाँ पर ही उन्हें प्रत्येक प्रकार की सुविधा का प्रबन्ध कर देंगे । (**धनपाल से**) आप कहिये कविश्रेष्ठ ! आप क्यों इतनी देर से मौन हैं ? कहिये, हमारी माता तो

सकुशल थी ?

धनपाल : हाँ देव ! जिसकी सन्तान सुयोग्य हो उसकी कुशलता सदैव बनी रहती है ।

भोज : मैं ऐसा सोच रहा था कविवर, कि मैं इस प्रदेश मे घूमता, ग्रामों-नगरों का भ्रमण करता हुआ धार पहुँचूँ । और आप सब लोग दो दिन पश्चात् ही यहाँ से प्रस्थान कर दे । माता से हमारा प्रणाम देकर कहना कि मैं शीघ्र ही पहुँचने की चेष्टा करूँगा ।

धनपाल : जैसी देव की इच्छा ।

भोज : राज्य-प्रबन्ध तो ठीक-ठीक हो ही रहा है ।

धनपाल : उसकी चिन्ता न करे देव ! वह तो सब ठीक है ।

भोज : कोई पूछ तो कह देना आखेट के विचार से रुक गये हैं ।

धनपाल : आपके साथ भी तो कुछ व्यक्ति रहेंगे ही ।

भोज : कोई आवश्यकता तो नही, यदि आप चाहें तो भास्कर भट्ट को छोड़ जाएँ ।

धनपाल : शुभ है ? समवयस्क साथी ही उत्तम रहता है ।

भोज : वैसे आवश्यक सामग्री लेकर कुछ सैनिक भी श्रेष्ठियों के वेश में हम से एक योजन आगे या पीछे रहेंगे । आओ फिर कुछ देर घूमकर उत्सव का ही आनन्द लें । **(भोज का प्रस्थान, धनपाल और गोविन्द भट्ट भी साथ जाते हैं । रङ्गमंच पर अन्धकार छा जाता है) ।**

दूसरा दृश्य

[समय—सन्ध्या। स्थान—पहले दृश्यवाला। रङ्गमंच सूना है। इतने में बीच के दरवाजे से ज्योत्स्ना बाहर जाती है। साधारण वेशभूषा, भोली-भाली। अवस्था सत्रह-अठारह के लगभग। सुन्दर और स्वस्थ। इधर-उधर देखती है]

ज्योत्स्ना : कोई भी नही यहाँ। हूं, पिताजी भी विचित्र प्राणी है। एक क्षण भी विश्राम नहीं लेते। अतिथियों के साथ स्वयं भी घूमने चले गए।

[घर के अन्दर लौटने लगती है तभी हरिहर की आवाज आती है।]

हरिहर : **(दूर से)** अरी ज्योत्स्ना, ठहर पुत्री ! मै आ गया।

[हरिहर का प्रवश]

ज्योत्स्ना : कहाँ चले गये थे ?

हरिहर : कही नही, यही पच्चीस-तीस डग तक बाते करता-करता त्रिभुवन और भास्कर के साथ चला गया था। मैने सोचा, इन्हे नदी का पथ ही बता आऊँ। स्नान-ध्यान करने की उनकी आकांक्षा थी।

ज्योत्स्ना : **(हँसकर)** आप स्वयं लौट आये या उन्होने लौटा दिया।

हरिहर : मेरी तो चलने की इच्छा थी। मै भी सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त हो आता।

ज्योत्स्ना : हूँ, पर उन्होंने कहा होगा, जाइये गुरुदेव ! आप विश्राम कीजिये। आप बहुत थक गये होंगे। हम स्वयं ही चले जाएँगे। आप क्यों कष्ट करते है ?

हरिहर : हाँ, वैसे थकने की तो कोई बात नही है। भास्कर ने मुझे

अपने अश्व पर ही बिठा लिया था । पर मैं अश्व पर बैठने का अभ्यस्त नहीं हूँ ! इसीलिए देह टूट रही है । साँझ आ रही थी, इसीलिए अश्वों को आपस में होड़ लगाकर दौड़ाते आये हैं । चलो अच्छा हुआ आज ही घर पहुँच गया, नहीं तो कल साँझ तक कहीं आ पाता ।

ज्योत्स्ना : उन्हें तुम्हारी नहीं अपनी साँझ काटने की चिन्ता थी इसलिए पथ में ही आतिथेय ढूँढ लिया ।

हरिहर : बड़ी वाचाल है री तू ! भारत में उत्पन्न होकर अतिथि के आगमन पर ऐसे शब्द कहती है ।

ज्योत्स्ना : मैं तो नहीं कहती, माता कहती है । माता भी क्या करे उसे परिस्थितियाँ बाध्य करती हैं । आपको सम्भवतः ज्ञात नहीं कि आज घर में अन्न का दाना नहीं है । सिप्पी भर घृत नहीं है ।

हरिहर : अन्न का दाना नहीं है तो फिर क्या हुआ दो लौकियाँ और राँध लो ।

ज्योत्स्ना : आपका तात्पर्य यह है, उन्हें रोटी की जगह साग-भाजी ही खिलाई जाए ।

हरिहर : और क्या ? इसमें हानि ही क्या है ? पेट ही तो भरना है बेटी ।

ज्योत्स्ना : वाह पिता जी ! हर जाने-अनजाने के सम्मुख हम अपनी दरिद्रता का प्रचार करते फिरें । माँ बेचारी पड़ौस से जाकर आटा लाई है और घृत लेने के लिए पटेल जी के घर कैलाशपति को भेजा है ।

हरिहर : हाँ तो फिर क्या हुआ ? पड़ौसियों को आवश्यकता पड़ती है तो वह भी हम से ले जाते हैं । इसी तरह यह संसार-चक्र चलता है बेटी । पड़ौसी होते किस लिए हैं । सुख-

दुख मे काम आने के लिए ही तो ! यह दोनों लड़के बड़े ही भले है । सतोषी जीव ।

ज्योत्स्ना : होंगे । पर संतोषी जोव का यह अर्थ नहीं है कि आप उन्हे अतिथि बनाकर भोजन ही न दें।

हरिहर : पगली, भला यह मैंने कब कहा । पर जो खाते हैं वही तो खिलायेगे । वैसे मैंने उन्हें अपनी दशा से पथ में ही अवगत करा दिया था । मै ठहरा स्पष्टवक्ता ।

ज्योत्स्ना : वह तो मै अच्छी तरह जानती हूँ । (**व्यंग्य से**) हाँ बाबा, पर तुम्हारे हाथ लग कैसे गई यह रत्नों की जोड़ी ?

हरिहर : फिर वही ! (**नकली रोष**) तेरा स्वभाव ही बड़ा विचित्र है । हर बात व्यंग्य मे करती है ।

ज्योत्स्ना : फिर भी बताने में क्या हानि है ?

हरिहर : तेरी ननिहाल से जब मै चला तो इधर आते हुए दो कोस पर जो बाटिका पड़ती है न वहाँ शिव मन्दिर के चबूतरे पर बैठे दोनों विश्राम कर रहे थे । मै कुएँ से पीने के लिए पानी निकालने लगा । तुम तो जानती ही हो उस कुएँ का पानी भी पाताल में है । इनके हृदय में मुझे वृद्ध समझ कर करुणा उत्पन्न हुई । त्रिभुवन बोला, ठहरो बाबा ! हम तुम्हे पानी पिलाते है ! आओ बैठो इस शीतल छाया में विश्राम करो, फिर भास्कर ने कुएँ से पानी निकाल कर मुझे पिलाया । (**कुछ सोचकर**) हाँ, सुन याद आया । त्रिभुवन बहुत अच्छा ज्योतिषी है । उससे तेरे भाग्य के विषय में पूछूँगा ।

ज्योत्स्ना : हूँ, तो एक ज्योतिषी है और दूसरा वह क्या काम करता है ?

हरिहर : पगली है ! अरी वैसे दोनों श्रेष्ठी हैं और वाणिज्य के सम्बन्ध में धार नगरी जा रहे हैं । वास्तव में तो यह बात

है चन्द्रिका कि मेरी समझ में इनकी बातें आई नहीं हैं। दोनों कवि हैं, दोनों सुशिक्षित हैं—यह निश्चित है। मेरा विचार है कि इनके हृदय में कवि रूप से राजाश्रय पाने की इच्छा है। और यदि राजाश्रय न मिला तब फिर व्यापार करेंगे।

ज्योत्स्ना : पिताजी ! आपने क्यों राजाधिराज का निमन्त्रण तब व्यर्थ ही अस्वीकार कर दिया।

हरिहर : नहीं बेटी, हम भोले-भाले ग्रामीण लोग हैं। हमारा राजधानी में निर्वाह कठिन है। फिर तू ही सोच बेटी, मैं अगर वहाँ चला जाता तो फिर यहाँ निर्धन किसानों के बच्चों को शिक्षा कौन देता।

ज्योत्स्ना : न जाने क्यों मेरे हृदय में राजधानी देखने की बहुत अभिलाषा है।

हरिहर : अवश्य पूर्ण होगी बेटी ! कभी समय निकालकर तुझे धार नगरी घुमा लाऊँगा। तेरे ताऊ गोविन्द भट्ट मण्डप-दुर्ग के अध्यक्ष हैं। फिर अब तो राजाधिराज से भी परिचय हो चुका है।

[तभी भीतर से आवाज आती है—'ज्योत्स्ना !' 'ओ ज्योत्स्ना !']

हरिहर : चल बेटी, भीतर चल। तेरी माँ बुला रही है। मैं अभी आया।

ज्योत्स्ना : आप अब किधर चल दिये ?

हरिहर : मैं जरा पटेल जी की चौपाल तक हो आऊँ। यदि उनके यहाँ आज कुछ रास-वास हो रहा हो तो अपने अतिथियों को भी ले जाऊँ। यदि कुछ भी न हुआ तो अतिथियों के

आने की सूचना ही दे आऊँगा।

ज्योत्स्ना : अच्छा जाओ, पर जल्दी आना।

हरिहर : अभी आया! पर सुन तख्त पर लाकर कोई गद्दा अच्छा सा बिछा दे। वे लोग आने ही वाले होंगे। कोने वाले कमरे में उनका सामान रखा है न बेटी, उनके सोने का प्रबन्ध भी वहीं करना है।

ज्योत्स्ना : अच्छा आप चिन्ता न करें।

[कहती हुई भीतर जाती है। एक ओर हरिहर जाते हैं, तभी ज्योत्स्ना गद्दा लाती है और तख्त पर बिछाकर चली जाती है। दूसरी ओर से तभी छद्मवेश में भोज और कवि भास्कर भट्ट आते हैं]

भास्कर : (इधर-उधर देखते हुए) इस वेश में आपको कोई नहीं पहचान सकता सम्राट!

भोज : फिर वही बात, सम्राट नहीं त्रिभुवन कहो। तुम सखा होते हुए भी हर समय सम्राट की रट लगाये रहते हो।

भास्कर : भूल हुई देव! कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि वणिक युवक के वेश में आप हो सकते हैं।

भोज : जीवन का आनन्द तो इसी में है भास्कर भट्ट? वैसे तुम्हें ही देखकर कौन कह सकता है कि तुम मालव-देश के राज-कवि हो सकते हो।

भास्कर : क्या मैं श्रीमान् से पूछ सकता हूं कि आपका यहाँ कितने दिन रहने का विचार है?

भोज : अधिक-से-अधिक दो दिन। जब शाकम्भरी विजयोत्सव पर इन लोगों ने हमारा स्वागत किया था तब आचार्य हरिहरदास ने गोविन्द भट्ट के द्वारा हम पर यह इच्छा प्रकट की थी कि सम्राट मेरे विद्यालय को एक बार देखें।

तब हमने वचन दे दिया था। (हँसकर) और आज हम इस वेश में उसी वचन का पालन करने आये है। सोचता हूँ, यदि सचमुच ही इनके काम मे कुछ सार है तो राज्य की ओर से इन्हे कुछ सहायता दी जाए।

भास्कर : उन्हे स्वप्न मे भी यह विचार नही होगा कि यह लोग उनके विद्यालय की जाँच करने आये है।

भोज : यही तो बात है, यदि पहले से ही पता लग जाये कि सम्राट आने वाले है तो दिखावट के लिए जी भरकर सजावट होती है। उस समय दूसरो की कमी को हम पकड़ नही पाते। (**भावावेश मे**) मै राजधानी से ही नही सम्पूर्ण मालव देश से ही निरक्षरता को दूर करना चाहता हूँ। धार मे तो भोजशाला और सरस्वती मन्दिर की स्थापना की ही है। पर चाहता हूँ, ग्रामीण जनता के लिए भी हर एक ग्राम मे एक पाठशाला अवश्य हो। देखने आया हूँ, हरिहरदास सम्राट को ही प्रसन्न करना चाहते है या वास्तव मे ही यह ग्रामीण जनता मे शिक्षा का प्रचार करना चाहते है।

भास्कर : वैसे आपके इस तरह छद्मवेश मे घूमते रहने से जनता बहुत सतर्क रहने लगी है। वह जानती है सम्राट कभी भी, कही भी, किसी वेश मे मिल सकते है। (**हँसकर**) मित्र! एक बात माननी पड़ती है कि राजा के साथ-साथ आप अपने युग के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता है।

भोज : (हँसकर) तुम्ही बताओ, यदि अभिनय न करूँ तो क्या करूँ? मेरे इस अभिनय के कारण ही बढ़ते हुए भ्रष्टाचार कम हो चले है। कई राज्य-कर्मचारियो को मैने निर्धन प्रजा से धन लेते हुए इस वेश मे स्वय पकड़ा है।

उन्हें कड़े से कड़ा दण्ड दिया है। (**हँसकर**) मेरे इस अभिनय के कारण अच्छे-अच्छे राज्याधिकारी शंकित रहते हैं। (**एक ओर को इशारा करते हुए**) ठहरो, यह बालक इधर ही आ रहा है, इससे कुछ बातचीत करें।

[**तब तक एक दस वर्ष का बालक कटोरे में कुछ लिये एक ओर से रंच पर आता है। और दोनों को अभिवादन करके भीतर जाना चाहता है, तभी भोज बुला लेते हैं**]

भोज : बालक ! बालक !

कैलाश : आज्ञा अतिथिदेव !

भोज : क्या नाम है तुम्हारा बालक ?

कैलाश : कैलाशपति।

भास्कर : सुन्दर नाम है। पण्डित जी के सबसे छोटे पुत्र हो ?

कैलाश : पुत्रवत् ही हूँ। वैसे पण्डित जी के तो ज्योत्स्ना के अतिरिक्त और कोई सन्तान नहीं है।

भास्कर : सुनो भैया ! हमें भी अपने बालक पढ़ने के लिए यहाँ भेजने हैं। कितना धन व्यय करना होगा।

कैलाश : धन का यहाँ प्रश्न ही क्या उठता है ? हो तो दे देना, न हो तो मत देना। मेरे पिता भी इन्हें कुछ नहीं देते। बड़े ही निर्धन हैं। मैं तो रहता भी पण्डित जी के पास ही हूँ। बस अपने घर तो प्रतिमास एक बार जाकर माता-पिता जी से मिल आता हूँ।

भोज : क्यों जी कैलाशपति जी, जब आपके पिता निर्धन हैं तब आप उनके कार्य में हाथ क्यों नहीं बटाते ? भला इस पढ़ने-लिखने में क्या रक्खा है ?

कैलाश : क्या रक्खा है ! रक्खा क्यों नहीं ? पढ़-लिखकर विद्वान् बनूँगा, तब महाराज की सभा में जाऊँगा। वहाँ से अपने

माता-पिता को धन भेजा करूँगा।

भोज : किस राजा की सभा में जाओगे ? कौन हैं यहाँ के राजा ?

कैलाश : विचित्र आदमी है जी आप, जो आप लोगों को यह भी मालम नहीं कि कौन है यहाँ के महाराज !

भोज : हमें तो अपने काम से काम ! कोई राजा हो, हमें क्या लेना ! वैसे उनका नाम बता दो तो अच्छा है।

कैलाश : महाराज भोजराज हमारे राजा है। धार नगरी में रहते है।

भास्कर : तुमने देखा है उन्हें ? उनसे बातचीत की है ?

कैलाश : दूर से ही देखा है, बातचीत नहीं कर सका। पण्डित जी उनसे मिल चुके हैं। बड़ा होकर मैं भी उनसे मिलूंगा। अतिथिदेव! मैं भीतर यह घत दे आऊँ फिर आकर आपसे बातें करूँगा।

भोज : अवश्य !

[कैलाश जाता है]

भोज : भास्कर ! पण्डित हरिहरदास के विषय में आचार्य गोकुल भट्ट ठीक ही कहते थे। विद्वान और निःस्वार्थी मनुष्य है।

भास्कर : इस मनुष्य पर सरस्वती तो प्रसन्न है पर लक्ष्मी रुष्ट ही दीखती है। यह घृत हम लोगों के भोजन के लिए ही लाया गया दीखता है।

भोज : यह बात तो स्पष्ट है। जब हम सरिता में तैर रहे थे तब तुमने देखा होगा, हमें लक्ष्य करके कुछ पनिहारिनें आपस में बातें कर रही थीं। मैं यह समझकर कि बातों का केन्द्रबिन्दु हम ही हैं, डुबकी लगाकर झाड़ियों के पीछे से तट पर आ गया था।

भास्कर : वह तो मुझे ज्ञात है।

भोज : उनकी बातें सुनने लगा। ग्राम में आया हुआ बाहर का व्यक्ति तो एक दम ही पहिचान लिया जाता है।

भास्कर : हो सकता है, ग्राम में पण्डित हरिहरदास के साथ आते हुए भी इन्होंने हमें देखा हो।

भोज : सम्भव है, हरिहरदास की निर्धनता और अतिथि-सेवा ही इनकी बातचीत का विषय थी। सम्भवतः किसी के यहाँ से आटा भी आज हमारे लिए माँगकर लाया गया है। पर पण्डित जी की प्रशंसा कर रही थी। उन्हें गाँव की शोभा बतला रही थी। तभी उन्होंने अचानक बात-चीत बन्द कर दी।

भास्कर : मेरे साथ तुम्हें जल में न देखकर उन्हें सन्देह हो गया होगा।

भोज : निश्चित! वे इधर-उधर देखने लगी थी। मैं तभी नदी में उतरकर तुम्हारे पास आ गया था।

भास्कर : बात का प्रसंग बदल दो, पण्डित जी आ रहे हैं।

[तभी हरिहरदास आते हैं]

हरिहर : सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त हो आये भैया?

भास्कर : हाँ बाबा! सरिता-स्नान का बहुत ही आनन्द आया।

हरिहर : वह तो है ही। आओ भैया, तुम्हें तुम्हारा शयनकक्ष दिखला दूँ। कुछ देर विश्राम करलो तब तक भोजन भी बन जायगा।

भोज : विश्राम की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है बाबा। तब तक यहीं बैठकर बातें करते हैं।

हरिहर : बात यह है कि मुझे एक आवश्यक कार्य पड़ गया है। कुछ देर वहीं लगेगी। ग्राम के दो सगे भाई आपस में झगड़ पड़े हैं। बात काफी बढ़ गई है। पटेल जी ने अभी

पंचायत बुलाई है, और निर्णायकों मे एक मे भी हूँ। पटेल जी मुख्य निर्णायक है।

भोज : पचो और अपराधियों के अतिरिक्त और कोई वहाँ न होगा ?

हरिहर : नही, यह गुप्त बैठक नही है। गाँव के सभी लोग होंगे। पक्ष-विपक्ष दोनों ओर के साक्षी होगे। तब उचित निर्णय दिया जाएगा।

भोज : क्यो पण्डित जी, आपकी इस पंचायत का दृश्य हम भी देख सकते है ?

हरिहर : हाँ, हाँ, क्यों नहीं। (**ऊँची आवाज देते है**) कैलाशपति ! कैलाशपति !

कैलाश : (**अन्दर से आते हुए**) जी !

हरिहर : अश्वों को घास तो डाल दी पानी है ? तो दिखा दिया है न ?

कैलाश : कुछ देर पहले उन्ह पानी पिला लाया था, अब आनन्द से घास खा रहे है।

हरिहर : तब ठीक है। सुनो कैलाशपति, भीतर कह दो हम सब पंचायत में जा रहे है। वहां से लौटने पर भोजन करेंगे। चलो भैया, पटेल मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

[**तभी दीपक लिए हुए ज्योत्स्ना आती है और दीपक को एक आले मे रख देती है। दूसरी ओर से घबराये हुए दो युवक आते है। माथे पर और कपड़ों पर रक्त के छीटे है। दोनों कराह रहे है**]

गोपाल : पानी, पानी पिलाओ बाबा !

हरिहर : ज्योत्स्ना, शीघ्र पानी लेकर आ बेटी ! क्या हुआ गोपाल ? धैर्य से काम लो बेटा ! क्या किसी से झगड़ा हो गया है ?

नरपति : हमें दस्यु-दल ने लूट लिया है। वह हमारे पशुधन को हाँक कर वन की ओर ले गये हैं। रात्रि में ग्राम पर भी आक्रमण की आशंका हो सकती है। बहुत बड़ा दस्यु-दल है।

हरिहर : कैलाश, शीघ्र जाकर पटेल जी को बुला ला! कहना पंचायत कल पर स्थगित कर दें। ग्राम पर दस्यु-दल के आक्रमण की आशंका है। गोपाल और नरपति घायल हो कर आये हैं।

[**कैलाश जाता है। ज्योत्स्ना पानी लेकर आती है। गोपाल और नरपति पानी पीते हैं**]

गोपाल : हम बड़ी कठिनता से बचकर आये हैं! चन्दन और रोहिताश्व वहीं मूर्छित पड़े हैं।

नरपति : हो सकता है, दस्यु-दल उन्हें अपने साथ ही ले गया हो।

भोज : यहाँ से कितनी दूर पर यह घटना घटी है।

गोपाल : अधिक से अधिक दो कोस पर!

भास्कर : तब तो वह अधिक दूर नहीं गये होंगे।

भोज : उनका पीछा किया जाए।

हरिहर : अपना तो सारा गाँव ही लुट गया भैया! गाँव की सब गौएँ और भैंसे वहीं थीं। अभी-अभी पटेल कह भी रहे थे कि आज न जाने क्यों चरवाहे अभी तक नहीं लौटे। दीपक जलाने का समय आ गया है।

[**तभी पटेल और कुछ युवक घबराये हुए आते हैं। हाथ में तलवारें और भाले हैं। कुछ ने मशालें भी पकड़ रखी हैं, साथ ही नेपथ्य में भी शोर बढ़ता जा रहा है**]

पटेल : पशुधन को लेकर दस्यु-दल किस ओर को गया है?

गोपाल : वन की ओर।

नरपति : यदि दस्यु-दल का पीछा करना है तो शीघ्रता करो। यदि

वह वन में चला गया तब उसे ढूंढना कठिन हो जायेगा।

पटेल : मं यह सोचता हूँ, कही वह दो दलों मे विभक्त न हों ? हम एक दल का पीछा करे और दूसरा दल ग्राम पर आक्रमण कर दे ।

भास्कर : आप भी अपने युवकों को दो दलों में विभक्त कीजिये। एक दल पीछा करे और दूसरा ग्राम की रक्षा।

भोज : वैसे यहाँ के दण्डपाशिक का शिविर या विषय यहाँ से कितनी दूर है । वहाँ सूचना पहुँचा दी जाये । वह अपने आप दस्यु-दल को ढूंढ़ेगा ।

पटेल : दोनो एक ही स्थल पर हैं । कोई चार कोस पर । किन्तु उससे कुछ भी नही बनेगा । दण्डपाशिक बहुत ही निष्क्रिय व्यक्ति है । हर समय मदिरा पीकर मदमस्त बना रहता है ।

भोज पर राजाधिराज की आज्ञा से महोत्सवों के अतिरिक्त बाकी समय मे तो मदिरापान का निषेध है ।

हरिहर : है तो पर साधारण जनता के लिए, सम्भवत. अपने उच्च अधिकारी वर्ग के लिए नही है ।

पटेल : अब आप ही सोचिये, जब राज्य-कर्मचारी ही राज्याज्ञा पालन नही करेंगे तब साधारण जनता पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? फिर मेरा तो विचार है कि वह स्वयं ही दस्यु-दल से मिला हुआ है । अब तो अपनी रक्षा स्वयं ही करनी पड़ेगी, दण्डपाशिक पर हमे विश्वास नहीं ।

भोज : हूँ ! क्या नाम है उसका ?

पटेल : अग्निमित्र ! उसका कोई सम्बन्धी राजसभा में उच्च पद पर है । उसे इसी बात का दम्भ है ।

भास्कर : जब राजाधिराज यहाँ आये थे तब उनसे आपने यह बात

कही क्यों नहीं। वह तभी उसे उचित दण्ड देते।

हरिहर : ऐसी बात कहने का समय कहाँ था। हर समय तो वह अधिकारी वर्ग से घिरे रहते थे। वैसे मैंने आचार्य गोकुल भट्ट के कान मे यह बात डाल ही दी थी! वह अवसर पाकर सम्राट को बता चुके होंगे।

| नेपथ्य मे शोर बढ़ता है- दस्यु-दल का पीछा करो इत्यादि |

नरपति : जो कुछ करना है शीघ्रता मे करो पटेल जी। अधिक सोचने-विचारने का समय नही है।

भोज : हम कुछ युवकों के साथ दस्यु-दल का पीछा करते हैं। आप लोग ग्राम की रक्षा करें। भास्कर! धनुषों पर प्रत्यंचा चढ़ाकर लाओ। दोनों तूणीर बाणों से भर लाना। मै तब तक अश्वों को खोलकर लाता हूँ।

भास्कर : कैलाशपति, हमारा सामान कहाँ रक्खा है भैया?

कैलाश : आइये, मेरे साथ आइये। **(दोनों घर के भीतर जाते है)**

भोज : **(नरपति और गोपाल की ओर देखते है)** आप में से एक व्यक्ति तो हमारे साथ चलेगा ही!

नरपति : मै चलूँगा।

पटेल : ऐसा करो नरपति, मेरी अश्वशाला मे जाकर सब अश्व खोल लो। ग्राम के सारे नवयुवक जाकर दस्यु-दल को बन्दी बनाकर लाओ **(करबद्ध होकर भोज से)** अतिथिदेव, आप वन की ओर न जाएँ। ग्राम की रक्षा मे हमे सहयोग दें।

भोज : क्यों, क्या आप हमें कायर समझते है?

पटेल : ऐसी बात नहीं देवता, आप हमारे अतिथि है। ईश्वर न करे यदि कुछ अनिष्ट हो जाय तो सदैव के लिए हमारे

ग्राम पर कलंक लग जायेगा ।

हरिहर : फिर आप ठहरे वणिक !

भोज : इसकी आप चिन्ता न करें । हमारी बुद्धि हानि-लाभ और वाणिज्य के विषय में ही सोचती रहती है इसीलिए हम वणिक हैं । पर आपत्तिकाल में या युद्ध के समय हमारे भुज-दण्ड फड़क उठते हैं । इस नाते हम क्षत्रिय भी हैं ।

ज्योत्स्ना : (**सहसा कह उठती है**) कवि और ज्योतिषी होने के नाते विद्वान अर्थात् ब्राह्मण भी हुए । (**लाज से सिर झुका लेती है**)

भोज : (**मुस्कराकर**) वह तो हैं ही । चलो नरपति, हमारा पथ-प्रदर्शन करो ।

पटेल : भाइयो, जिसे भी चलना है वह शीघ्रातिशीघ्र तैयार होकर आ जाएं । ग्राम के चौक में हम सब प्रतीक्षा करेंगे ।

[तभी भास्कर अस्त्र-शस्त्र लेकर आता है । भोज अपना धनुष और तूणीर पकड़ लेते हैं । फिर खड्ग अपनी कोट के साथ बांधते हैं । धीरे-धीरे सब मंच से एक ओर को उतर जाते हैं । मंच पर ज्योत्स्ना और कैलाशपति रह जाते हैं । ज्योत्स्ना कुछ सोच रही है ।]

कैलाश : क्या सोच रही हो बहिन ज्योत्स्ना ?

ज्योत्स्ना : हूँ, यूँ ही । कुछ विशेष नहीं । पिता जी भी उन लोगों के साथ गये क्या ?

कैलाश : नहीं, यह तो अभी लौट आयेंगे । वहां तो मेरे विचार में अश्वारोही ही जायेंगे ।

[तभी भीतर के द्वार से हेमवती आती है]

ज्योत्स्ना : तुमने कुछ सुना माँ ?

हेमवती : हाँ बेटी, मैं शोर सुनकर द्वार के पीछे आ गई थी। **(साँस भरकर)** दिन भर के थके-माँदे, भूखे और प्यासे अतिथि, दस्यु-दल के पीछे चले गये हैं। अच्छा नहीं हुआ।

कैलाश : पटेल जी ने तो नाहीं की थी पर त्रिभुवन नहीं माने।

[तभी नेपथ्य में घोड़ों की टापें सुनाई देती हैं। ज्योत्स्ना, कैलाश और हेमवती मंच के एक ओर जाकर देखती हैं, धीरे-धीरे टापों की आवाज दूर हो जाती है]

ज्योत्स्ना : **(मंच के मध्य में आकर)** इस समय त्रिभुवन को देखकर तो ऐसा लग रहा था मानो स्वयं वीररस एक मनुष्य के रूप में युद्ध करने जा रहे हों।

हेमवती : तेरे बाबा न जाने किधर चले गये हैं।

ज्योत्स्ना : पटेल जी के साथ ग्राम की रक्षा-योजना पर विचार कर रहे होंगे।

हेमवती : **(उपेक्षा से)** पढ़ाना और बातें बनाना इसके अतिरिक्त और तो उनके पास कोई तीसरा काम है नहीं। आ ज्योत्स्ना ! भीतर आ। जा कैलाशपति, उन्हें ढूँढ़कर तो ला। ग्राम के सब व्यक्ति अपने-अपने धन को सुरक्षित स्थानों पर रख रहे होंगे। और इन्हें कोई चिन्ता ही नहीं।

ज्योत्स्ना : हमारे पास सुरक्षित स्थान पर रखने के लिए है ही क्या माँ !

हेमवती : अरी जो कुछ भी है, तेरे हाथ पीले करने को तिल-तिल करके जो थोड़ा-बहुत जोड़ रखा है, वह तो सुरक्षित रहे। पटेल जी को तो वास्तव में ग्राम की नहीं अपनी

रक्षा की चिन्ता है। वह जानते हैं ग्राम पर अगर दस्यु-दल का आक्रमण हुआ तो सबसे पहले उन्हीं के घर पर होगा। जा कैलाशपति, शीघ्र जाकर उन्हें बुला ला।

[कैलाशपति जाता है]

हेमवती : चल बेटी, चलकर खुरपी से थोड़ी सी धरती खोद। और जो कुछ भी तुझे दूं, उसमें दबा दे।

ज्योत्स्ना : अच्छा माँ।

[दोनों घर के भीतर जाती हैं। रंगमंच पर अन्धकार हो जाता है]

तीसरा दृश्य

[स्थान—वही। प्रभात होने को जा रहा है। पौ फटने लग गई है। रंगमंच पर प्रभात का प्रकाश दीखता है। दीपक की लौ धीमी हो चली है। हरिहर दास तख्त पर बैठे हैं। तख्त के साथ ही भाला रक्खा है। धीरे-धीरे 'ओ नमो: शिवाय' का मन्त्र उच्चारण कर रहे हैं, तभी ज्योत्स्ना आती है]

ज्योत्स्ना : आज आपने तो सारी रात आँखों ही आँखों में बिता दी है पिता जी ! रात भर बैठे-बैठे महामन्त्र का जाप करते रहे हो !

हरिहर : हम क्या सारा ग्राम ही जग रहा है। कुछ देर पहले ही पटेल जी यहाँ से उठकर गये हैं। उनके जाने के बाद मैंने सोचा त्रिभुवन और भास्कर की मंगल कामना के लिए 'ओं नमो: शिवाय' का जाप ही करूं। बहुत देर हो गई अभी तक वे लोग लौटे नहीं।

ज्योत्स्ना : अनिष्ट की आशंका से मेरा हृदय काँप रहा है।

हरिहर : भयाकुल होने की कोई बात नहीं है बेटी ! देवाधिदेव महादेव सब भली करेंगे। त्रिभुवन वीर पुरुष है, ओजस्विनी वाणी, विशाल कक्ष और अजानबाहु का स्वामी है। उन्हीं लोगों का ध्यान करता हुआ मैं निशानाथ और उनकी चन्द्रिका को निहारता रहा।

ज्योत्स्ना : चाँदनी रात थी। चन्द्रमा ने उनका साथ दिया होगा।

[नेपथ्य में दूर से घोड़ों की टापें आती सुनाई देती है]

ज्योत्स्ना : ध्यान से सुनो बाबा ! सम्भवतः कुछ अश्वारोही आ रहे हैं।

[तभी नेपथ्य में सावधान हो जाओ इत्यादि आवाजें उठती हैं। हरिहरदास और ज्योत्स्ना मंच के एक ओर जाकर मार्ग की ओर देखते हैं। दूसरी ओर से पटेल आते हैं]

पटेल : सुन रहे हो आचार्य ? कुछ अश्वारोही गाँव की ओर आ रहे हैं।

हरिहर : इस ओर से दस्यु-दल नहीं आ सकता, अवश्य हमारे ग्रामवासी ही होंगे। (तभी नेपथ्य में घोड़ों की टापें निकट आती हैं और धीमी हो जाती हैं)

हरिहर : (उल्लास से) वह देखो पटेल ! सबसे आगे अश्व पर त्रिभुवन आ रहा है।

पटेल : दूसरे अश्व पर बन्दी के रूप में सम्भवतः दस्युराज है।

[पटेल और हरिहरदास मंच से बाहर चले जाते हैं। भीतर से हेपवती ज्योत्स्ना के पास आती है।]

हेमवती : क्यों ? क्या वे लोग आ गये ?

ज्योत्स्ना : त्रिभुवन दस्युराज को बन्दी बनाकर ले आये हैं। वे लोग इधर ही आ रहे हैं।

[तभी त्रिभुवन, दस्युराज, पटेल, हरिहरदास व कुछ युवक मंच पर प्रवेश करते हैं। दस्युराज के हाथ रस्से से बँधे हुए हैं]

हरिहर : भास्कर और दूसरे साथी कहाँ हैं ?

भोज : बाकी लोग पशुधन के साथ आ रहे हैं। भास्कर को मैंने मीनापुर भेजा है। वहाँ हमारे साथ के कुछ और श्रेष्ठि पड़ाव डाले पड़े हैं। और नरपति दण्डपाशिक को बुलाने के लिए गये हैं।

पटेल : (**व्यंग्य से डाकू की ओर इशारा करके**) ताकि उसकी थाती उसे सौंप दी जाये।

भोज : अभी तो यही होगा। पर बाद में इसे अपने साथ धार ले जाऊँगा। राजाधिराज के सामने इसे उपस्थित करके पुरस्कार प्राप्त करूँगा। (**दस्यु के बन्धन खोलते हैं**) और सुनाओ बन्धु ! तुम्हारी क्या सेवा की जाय ? तुम्हें बन्धनमुक्त किया है, पर भागने की चेष्टा मत करना। नहीं तो जीवन-मक्त हो जाओगे। इसका अनुमान तो तुम्हें हो ही गया होगा कि मेरे बाण कितनी दूरी तक पीछा करते हैं।

भीमा : कापुरुष नहीं हूँ। भागना नहीं सीखा। और यह भी निश्चित है, जीवन की रक्षा के लिए कभी किसी से भीख नहीं माँगता। तुम्हें भी यह विचार त्याग देना चाहिए कि मैं तुम से प्राणों की भीख माँगूँगा।

भोज : मैं तुम्हें प्राणों की भीख देने वाला कौन होता हूं ? मैं तो तुम्हें महाराज भोज के सम्मुख उपस्थित कर दूंगा। और मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि तुम सभ्य नागरिक जीवन बिताना चाहोगे तो वह तुम्हें क्षमा कर देंगे।

भीमा : (हँसता है) सभ्य नागरिक जीवन ! क्या बात कही है तुमने ? तो तुम्हारा क्या विचार है मैं उत्पन्न ही अपने माता-पिता के घर दस्यु के रूप में हुआ था ! **(व्यंग्य से)** सभ्य नागरिक, इन सभ्य कहलाने वालों में कई मुझ से भी भयानक दस्यु हैं युवक ! उनकी भयानकता का तुम अनुमान भी नहीं लगा सकते।

[मंच पर खड़े व्यक्ति विस्मय से उसकी ओर देख रहे हैं। भीमा कुछ देर बाद फिर बोलता है]

भीमा : मुझे देखकर व्यक्ति यह तो समझ जाते हैं कि हम मृत्यु के समान कठोर दस्यु के पल्ले पड़े हैं। यह सामने खड़ा हुआ भयंकर व्यक्ति दस्युराज भीमा है।

पटेल : ओह ! तो आप दस्युराज भीमा हैं।

भीमा : हूँ, मैं ही वह दुर्दान्त व्यक्ति हूँ, जिसका नाम सुनकर शीत ऋतु में भी तुम्हारे मस्तक पर स्वेद-बिन्दु झलक आते हैं। **(पटेल की ओर इशारा करता है)** सम्भवतः तुम यहाँ के पटेल दीखते हो।

पटेल : जी हाँ, मैं यहाँ का पटेल हूँ।

भीमा : **(व्यंग्य से)** तुम कितने भले दीखते हो, जीवन की तरह कोमल लग रहे हो ! पर वास्तव में हो तुम मृत्यु से अधिक भयावने। मुझ में और तुम में इतना ही तो अन्तर है कि मैं एक ही वार में किसी का प्राणान्त कर देता

हूं, किन्तु तुम धीरे-धीरे व्यक्ति के जीवन के रस को चूस जाते हो। मैं व्यक्तिगत तुम्हारी बात नहीं करता तुम्हारे वर्ग की बात कर रहा हूँ। सभ्य कहलाने वाले वर्ग की। जहां भोले-भाले मृग रूप में भयंकर भेड़िये रहते हैं, जिनके कारण मुझे विवश होकर दस्यु बनना पड़ा।

[कहते-कहते चुप हो जाता है और शून्य की ओर ताकने लगता है और बाद में एक दीर्घ निश्वास छोड़ता है]

भोज : कहो, कहो, चुप क्यों हो गये भीमा? कहते चलो, तुम्हारी कहानी हृदयग्राहिणी है।

भीमा : फिर कभी सही युवक। जल का प्रबन्ध तो करो मुझे प्यास लगी है।

भोज : देवी ज्योत्स्ना! पीने के लिए जल तो लाओ।

ज्योत्सना : अच्छा जी!

[कहती हुई भीतर जाती है। साथ ही हेमवती भी जाती है। नेपथ्य में भीड़ का शोर बढ़ रहा है। मंच के दोनों पथों में से ग्रामीण व्यक्ति झाँक रहे हैं]

हरिहर : दस्युराज के दर्शन करने को भीड़ इकट्ठी हो गई है। लोग एक-दूसरे को धकेलकर आगे जाना चाहते हैं।

पटेल : राजाधिराज के दर्शनों के लिए चाहे लोगों में इतनी उत्सुकता न रही हो।

भीमा : **(फीकी हँसी)** वह सोचते होंगे, दस्यु कोई दो सींगों वाला भयानक हिंस्र जन्तु होता है। अभागे यह नहीं जानते परिस्थितियों से बाध्य होकर, समाज के ठेकेदारों द्वारा सताया जाकर उन्हीं जैसा कोई भला आदमी प्रतिहिंसा

के जाग जाने पर भयकर दस्यु बन जाता है। **(अट्टहास)** एक विचित्र बात इस दस्यु-जीवन मे यह रही युवक !

[तभी ज्योत्सना पात्रों मे जल लेकर आती है। पहले भीमा ओक से जल पीती है फिर भोज। जल पीते हुए भोज ज्योत्स्ना की ओर देखते है। वह शरमा जाती है]

भोज : (**भीमा से**) आप कुछ कहते-कहते रुक गये थे।

भीमा : (**सोचते हुए**) हाँ, मै तुम्हे अपने दस्यु-जीवन की एक बात बता रहा था। जब मैं निर्धन, सभ्य और भले व्यक्ति की तरह रहता था, मेरे ग्राम के पटेल और लेखपाल सीधे मुँह बात भी नही करते थे। और जब मै उन्ही लोगों की कृपा से इस दस्यु-जीवन में आया तब वही आदरसहित बन्धुवर और पितृव्य कहकर बुलाते थे। हर जगह शक्ति की उपासना होती है। आवश्यकता पड़ने पर अब वही मेरे विरुद्ध राजसभा में साक्षियाँ देंगे। कितनी विचित्र है यह दुनिया !

भोज : पटेल, लेखपाल और विषयपति से पीड़ित होकर तुम दस्यु बने। यह तो शुभ नही हुआ। तुम्हें राजसभा मे जाकर महाराज को अपनी स्थिति के विषय में बतलाना चाहिए था। पटेल और लेखपाल के दुष्कार्यो का भंडा-फोड़ करना चाहिए था।

भीमा : मै सब कुछ करके देख चुका हू युवक ! यहाँ के दण्ड-पाशिक के पास मै अपना विरोध-पत्र लेकर गया पर कोई लाभ नहीं हुआ, पटेल के कहने में आकर उल्टा उसने मुझे ही दण्ड दिया। उसके पश्चात फिर मै राजा-धिराज के पास पहुँचा। तब देश पर सिन्धुराज का

शासन था। पर वहाँ मुझे प्रहरियों न राजा से नहीं मिलने दिया

भोज : वह क्यों ?

भीमा : वह चाहते थे, पहले मैं उनकी भेंट-पूजा करूँ। पर मेरे पास धन था ही कहाँ ? मैं तो भूखा-प्यासा पैदल चलकर वहाँ पहुँचा था। सम्भवतः वहाँ के दण्डपाशिक ने अपने बचाव के लिए उनके पास कोई सन्देश भेज दिया हो कि इस व्यक्ति को (**मुझ को**) राजा से न मिलने दिया जाये।

भोज : तब क्या हुआ तुम लौट आये ?

भीमा : और क्या करता, विवश होकर लौट आया।

हरिहर : पर सुना है, राजा भोजदेव ने तो अपनी राजसभा में मध्याह्न पश्चात् कुछ समय ऐसा रखा है जब कोई भी व्यक्ति जाकर उनसे मिल सकता है।

भोज : हाँ, यह बात सच है। उन्हें जब पता लगा कि उनके प्रहरी दुखी व्यक्तियों को लौटा देते हैं तब उन्होंने एक समय ऐसा निश्चित कर दिया जबकि हर कोई पीड़ित प्राणी राजा को अपनी दुख-गाथा सुना सकता है।

भीमा : (**साँस भरकर**) उस समय कोई ऐसा नियम नहीं था होता तो मैं दस्यु न बनता। वहाँ से लौटने पर यहाँ के दण्डपाशिक ने मुझे फिर डाँटा और बुरी तरह पीटा सताया। पटेल की इच्छा से मुझ पर कुछ झूठे आरोप लगाकर वर्ष भर के लिए बन्दीगृह में डाल दिया।

भोज : पटेल से तुम्हारी शत्रुता क्यों थी ?

भीमा : वह विलासी और दुष्ट-मनोवृत्ति का व्यक्ति था। ग्राम की युवतियों पर भद्दे व्यंग्य कसता था। इसी बात पर मैंने उसे एक-दो बार डाँटा भी। मेरी पत्नी पर भी उसने एव

बार व्यंग्य किया। (**कुछ सोचता है**) छोड़ो, कहानी लम्बी है। संक्षेप में यह है कि एक वर्ष बाद जब मैं मुक्त हुआ तब मेरा गृह-द्वार नष्ट हो चुका था। माँ, मेरे दुख से दुखी होकर मरी और पत्नी ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए कुएं मे कूदकर आत्महत्या कर ली थी।

भोज : (**साँस भरकर**) फिर···

भीमा : फिर क्या ? मैं दस्यु बन गया। पटेल के अत्याचारों से पीड़ित व्यक्ति मेरे साथ आ मिले। दण्डपाशिक, लेखपाल, पटेल तीनों का मैंने वध कर दिया। तब यह प्रतिशोध की भावना थी। अब दस्यु-कार्य जीविका का साधन है। सुनो युवक ! तुम मुझे दण्डपाशिक को सौंप दोगे। जानते हो तब क्या होगा ?

भोज : क्या होगा ?

भीमा : वह राजाधिराज को लिखेगा। सुप्रसिद्ध दस्यु भीमा को कठिन परिश्रम के पश्चात् मैंने बन्दी बनाया है। यह कह कर वह मूर्ख तुम्हारे स्थान पर स्वयं पुरस्कार प्राप्त करेगा।

हरिहर : यह भी हो सकता है, तुम से पर्याप्त धन मिल जाने पर वह तुम्हें छोड़ ही दे। उसे तो पुरस्कार मिलना चाहिए चाहे वह राजाधिराज भोज दे चाहे दस्युराज भीमा !

भीमा : (**हँसकर**) ऐसा भी कभी-कभी हो जाता है, किन्तु अब मुझे दस्युपन के नारकीय जीवन से घृणा हो चुकी है। न स्वयं सुख से रहो, न दूसरों को रहने दो। मुझे तुम राजा भोज के सम्मुख ले चलो युवक ! मैं उन्हे बतलाऊँगा कि तुम प्रजा को सुख पहुँचाने के इच्छुक हो। पर तुम्हारी प्रजा तुम्हारी इसी भावना से तुम्हारे सेवकों द्वारा और

अधिक सताई जाती है।

भोज : निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हें राजाधिराज से मिलवा दूँगा।

[तभी नेपथ्य में अश्वों की टापों की ध्वनि]

पटेल : लो दण्डपाशिक अग्निमित्र भी पधार गये। (**द्वार के पास जाकर**) हटो रे हटो, एक ओर हो जाओ दण्डपाशिक जी को पथ दो।

[दण्डपाशिक, नरपति और एक सैनिक का प्रवेश। सब अभिवादन करते हैं। दण्डपाशिक नशे में है और बिना कुछ कहे तख्त पर बैठ जाते हैं। भीमा और दण्डपाशिक एक दूसरे की ओर देखते हैं]

अग्निमित्र : क्यों पटेल, दस्यु भीमा को कहाँ बाँध रक्खा है ?

भीमा : मैं यह आपके सम्मुख उपस्थित हूँ महाराज ! मुझे बन्दी बनाने वाले इस साहसी युवक ने कृपा करके मेरे बन्धन खोल दिये हैं। मैं इसकी इस उदारता का सदैव के लिए बन्दी बन गया हूँ।

अग्निमित्र : ऊँ, हूँ ! उदारता का बन्दी बन गया हूँ ! सैनिक इसे बन्दी बनाओ **(भोज की ओर देखकर उपेक्षा से)** मूर्ख कहीं का ! किसकी आज्ञा से तूने इसके बन्धन खोले ?

भोज : जिसकी आज्ञा से मैंने इसे बन्दी बनाया था। मैंने ही इसे बन्धन-मुक्त किया है, पर इसे जाने नहीं दिया। अब आप इसे अपने साथ ले जा सकते हैं और जो उचित समझें दण्ड दे सकते हैं।

अग्निमित्र : तुम लोगों ने एक नहीं दो-दो अपराध किये हैं। तुम्हें इसका दण्ड मिलेगा। सर्व-प्रथम तो तुम्हें इसे बन्दी बनाकर मेरे पास ही लाना चाहिए था। फिर यदि यहाँ

लाए ही थे तो इसे मुदृढ रस्से से वृक्ष के साथ बाँधकर रखते ।

भोज : आप तक लाने के लिए पथ सुरक्षित नहीं था । हमें भय था कि अधिक संख्या में आकर इसके साथी हम पर आक्रमण न कर दें । और यहाँ इतनी भीड़ से इसके भाग जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था । यह प्यासा था, अतः पानी पीने के लिए इसके हाथ खोल दिये थे ।

अग्निमित्र : (**क्रोध से**) ओ हो, तब तो यूँ कहो कि जामाता की तरह से खिला-पिलाकर यहाँ बिठा रक्खा है, और इससे स्नेह-पूर्ण वार्ता हो रही थी ।

भोज : (**क्रोध से**) दण्डपाशिक जी ! क्या आपको महाराज ने इसीलिए नियुक्त किया है कि आप उनकी प्रजा के साथ इस प्रकार अशिष्टतापूर्ण बातें करें । मैं महाराज से आपके इस व्यवहार के विषय में कहूँगा ।

अग्निमित्र : जा जा बड़ा आया, महाराज का सगा ! मूर्ख कहीं का ! तुझे यह भी ज्ञात है कि तू किससे बातें कर रहा है ? (**नरपति से**) क्यों कहाँ है वह राजपुरुष जिनकी आज्ञा तू हमारे पास ले गया था । अर्द्धरात्रि में जाकर हमारे रागरंग को नष्ट कर दिया ! या वह केवल मुझे यहाँ बुलाने का मात्र बहाना था ।

भोज : बहाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । आपके सम्मुख सारी घटना है ।

अग्निमित्र : तुम चुप रहो जी ! मैं जिससे बात पूछ रहा हूँ उसको इसका उत्तर देना चाहिए, तुम्हें नहीं ।

[तभी नेपथ्य में कुछ अश्व आकर रुकते हैं । मंच पर भास्कर और कमलेश्वर का प्रवेश ।]

कमलेश्वर : राजाधिराज की···

[वह जय कहना ही चाहता है कि भोज आँखों द्वारा उसे रोक देते हैं। किन्तु ज्योत्स्ना भाँप जाती है और सिर हिलाती है।]

भोज : क्या आज्ञा है राजाधिराज की ?

कमलेश्वर : **(बात को बदलते हुए)** मैं आपसे नहीं दण्डपाशिक अग्निमित्र से बात करना चाहता हूँ।

अग्निमित्र : आज्ञा कीजिये, मैं ही अग्निमित्र हूं।

कमलेश्वर : राजाधिराज की आज्ञा से मैं इस प्रदेश का क्षत्रप नियुक्त हुआ हूँ। **(सब एक दूसरे को देखते हैं। दण्डपाशिक उठकर प्रणाम करता है)** राजधानी से चला ही आ रहा हूँ। मेरे शिविर से कुछ दूर पर ही यह घटना घटी है। मेरी आज्ञा तो आपको मिल ही गई होगी।

अग्निमित्र : जी हाँ, उसके अनुसार मैं उसी समय चला आया था।

कमलेश्वर : भीमा दस्यु के साथ दुर्ग की ओर चलिए।

अग्निमित्र : सैनिक ! भीमा को बाँध लो **(भोज की ओर इशारा करके)** और इस व्यक्ति को भी।

कमलेश्वर : इसे किस अपराध में बन्दी बनाया जा रहा है ?

अग्निमित्र : यह बहुत उद्दण्ड व्यक्ति है। इसने मेरा और शासन-सत्ता दोनों का अपमान किया है।

कमलेश्वर : मेरी आज्ञा से इसे यहीं रहने दो। सम्भवतः आपको यह विश्वास नहीं कि मैं राजपुरुष हूँ ! यह देखिये, मेरे पास राज-मुद्रा है। **(भोज आँख का इशारा करते हैं। कमलेश्वर समझ जाता है)** चलिए मैं भी आप लोगों के साथ ही चलता हूँ।

भोज : चलिए कुछ दूर तक हम आपको छोड़ आयें। इस घटना

मे सम्बन्धित कुछ बातें एकान्त में आपसे कहना चाहता हूँ।

कमलेश्वर : अवश्य, आइये मेरे साथ।

[सब एक-एक करके मंच से जाते हैं। अकेली ज्योत्स्ना मंच पर रह जाती है।]

ज्योत्स्ना : मुझे तो यह त्रिभुवन और भास्कर दोनों रहस्यमय प्राणी लगते हैं।

[कहती हुई भीतर चली जाती है। रंगमंच पर अन्धकार छा जाता है]

चौथा दृश्य

[स्थान—वही। समय—सन्ध्या होने को आ रहा है। ज्योत्स्ना और सुनन्दा बैठी बातें कर रहीं हैं।]

सुनन्दा : (**परिहास से**) एक-दो दिन से तू कुछ अधिक गम्भीर रहने लग गई है ज्योत्स्ना! जब भी देखो तभी कुछ खोई-खोई-सी क्या सोचती रहती है सखि!

ज्योत्स्ना : मैं तो पहले-जैसी ही हूँ। तू ही कुछ इन दिनों अधिक मुखर हो गई है।

सुनन्दा : अच्छा न बता तेरी इच्छा। मेरा अब कोई तुम पर अधिकार नहीं रहा। नहीं तो मैं विशेष आग्रह करके भी पूछ लेती।

ज्योत्स्ना : क्यों, कहाँ चला गया वह अधिकार?

सुनन्दा : मैं क्या जानूँ यह तो तू ही मुझसे अधिक अच्छी तरह बता सकती है। आज तुम्हारे पिता और दोनों अतिथि

हमारे यहाँ भोजन पर निमन्त्रित थे ।

ज्योत्स्ना : मुझे ज्ञात है, कल मेरे सम्मुख ही पटेल जी ने उन्हें अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण दिया था ।

सुनन्दा : मुझे उनकी बातों से कुछ ऐसा आभास मिला जैसे वह कल प्रातःकाल ही यहाँ से प्रस्थान कर रहे हैं। अब किधर गये है ?

ज्योत्स्ना : कौन ?

सुनन्दा : धन्य हो सखि, अब हमीं से यह छल-प्रपंच ! जान-बूझ कर अनजान बनने से काम नहीं चलेगा ।

ज्योत्स्ना : (मुस्कराकर) बता न किनके विषय में पूछ रही है ?

सुनन्दा : वही त्रिभुवन और भास्कर !

ज्योत्स्ना : मैं क्या जानूँ ? कही सरिता-तट पर घूमने गये होंगे, अपने मन के राजा है ।

सुनन्दा : अपने अर्थात् तेरे मन के राजा है। सच कहती है सखि !

ज्योत्स्ना : धत् पगली जब देखो तब परिहास ही सूझता है तुझे !

सुनन्दा : पर ग्रामवालों के विचार में तो त्रिभुवन वास्तविक राजा हैं । इस गाँव में ऐसा विचित्र अतिथि कभी नहीं आया था । सबके सब रात-दिन उसी के विषय में सोचते रहते है । भीमावाली घटना न घटती तब सम्भवतः किसी को कुछ भी पता नही चलता । सच-सच बता तेरा इस विषय में क्या विचार है ?

ज्योत्स्ना : सन्देह तो कुछ-कुछ मुझे भी है सखि ! यह सन्देह ही है। वह बहुत चतुर है, पकड़ाई मे नहीं आ पा रहे है ।

सुनन्दा : किसी और की पकड़ाई में आयें या न आयें । पर तूने तो उन्हें अपने दृगों में बन्दी बना लिया है । अब वह यहाँ से मुक्त नही हो सकते ।

ज्योत्स्ना : फिर वही बात, तेरे पास इसके अतिरिक्त भी और कोई बात है या नहीं। (**साँस भरकर**) वामन का चन्द्रमा को छूने का प्रयास करना ही मूर्खता है सखि !

सुनन्दा : (**हंसकर**) तब तू वामन की महत्ता को ही भूल गई है। अवसर आने पर वामन ने तीन ही डग में त्रिभुवन को माप लिया था। चन्द्रमा बेचारे की तो क्षमता ही क्या है ? आचार्य जी कहते थे कि त्रिभुवन ने तेरी कुण्डली देखकर बताया है कि तू राजरानी बनेगी। तेरे ग्रह बहुत ऊंचे हैं।

ज्योत्स्ना : पिता जी यह बात माता को बतला रहे थे तब मैंने भी सुनी थीं।

सुनन्दा : तू उस समय पास नहीं थी क्या ?

ज्योत्स्ना : मैं लज्जा के कारण उठकर चली गई थी।

सुनन्दा : (**परिहास से**) हाँ, तो उन्होंने क्या बताया कि तू राजरानी बनेगी ! समझी ! आकुलता उधर भी कम नहीं है।

ज्योत्स्ना : किसी के हृदय की बात मैं क्या जानूं ? वैसे ज्योतिष विद्या के वह पण्डित हैं, इसमें किसी को सन्देह नहीं है। पिताजी के अतीत की बहुत-सी बातें उन्होंने बता दीं। ज्योतिष पर वह एक ग्रन्थ 'राज-मृगांक करण' नामक लिख रहे हैं।

[**तभी हरिहरदास आते हैं**]

हरिहर : तुमने कुछ सुना सुनन्दा और ज्योत्स्ना ? (**दोनों नकारात्मक सिर हिलाती हैं**)

ज्योत्स्ना : क्या कोई नई बात है पिता जी ?

हरिहर : क्षत्रप कमलेश्वर ने दण्डपाशिक अग्निमित्र को उसके पद से हटा दिया है। उसे बन्दी बनाकर महाराज के पास

धार भेजा जा रहा है।

सुनन्दा : उस पर अभियोग क्या लगाये गये हैं ?

हरिहर : अरी सबसे बड़ा अभियोग तो यही था कि जब वह यहाँ आया था तब मदमस्त था। फिर उसके यहाँ जाने पर वहाँ भी मदिरा प्राप्त हुई। दूसरा कारण यह था कि वह प्रजाजनों से अशिष्टतापूर्ण व्यवहार कर रहा था। अरी हमारा त्रिभुवन कोई ऐसा-वैसा व्यक्ति थोड़े ही है। स्वयं धनी श्रेष्ठि है। धार में उसका व्यापार चलता है। साथ ही महामात्य बुद्धिसागर से इसकी घनिष्ठ मैत्री है। प्रसिद्ध ज्योतिषी, विद्वान और कवि होने के नाते राजाधिराज भी उसका सम्मान करते हैं।

सुनन्दा : मैं चलूँ ज्योत्स्ना ?

ज्योत्स्ना : कल आयेगी न ?

सुनन्दा : अवश्य ! **(कहती हुई जाती है)**

ज्योत्स्ना : बाबा, तुम्हारी यह रत्नों की जोड़ी आज किधर घूमने गई हुई है। कैलाशपति भी उनके साथ ही गया हुआ है।

हरिहर : आज दिन भर तो यहीं थे। पाठशाला में बालकों से बातें करते रहे। मेरा विचार है सरिता-तट तक गये होंगे या आस-पास के किसी ग्राम में गये होंगे। **(कुछ रुककर)** पाँच-छ दिन में ही यह दोनों अपने घर के से व्यक्ति बन गये हैं। कल इनके जाने पर मेरा हृदय निश्चय ही उदास हो जायगा। तेरी माँ कहती थी···

ज्योत्स्ना : माँ क्या कहती थीं बाबा ?

हरिहर : **(रुकते हुए)** यही कि मैं तेरे लिए त्रिभुवन से बात करूँ ?

ज्योत्स्ना : **(उत्सुकता से)** मेरे लिए उनसे क्या बात करनी है बाबा ?

हरिहर : तुझे क्या समझाऊँ बेटी ! अपनी माँ से ही पूछ लेना।

अच्छा समय निकालकर कुछ दिनों पश्चात् धार जाऊँगा। वहाँ जाकर इस सब रहस्य का पता लगाऊँगा (**उल्लास से**) भावी को कौन जाने। मेरी बेटी का भाग्य कितना प्रबल है ! चलूँ मै देखूँ तो सही यह लोग गये किधर हैं ?

[**हरिहरदास एक ओर जाते है तभी दूसरी ओर से भोज आते है ! ज्योत्स्ना उन्हें देखकर भीतर जाने लगती है। तभी वह पुकारते है**]

भोज : देवि ज्योत्स्ना !

ज्योत्स्ना : जी ! आज्ञा !

भोज : (**झिझककर**) कुछ नही। (**रुककर**) कल प्रात:काल ही हम यहाँ से जा रहे है।

ज्योत्स्ना : कुछ दिन और रुक जाते अतिथि !

भोज : क्या बतलाऊँ ज्योत्स्ना, जाना बहुत ही आवश्यक है। क्षत्रप धार से आये है। इनसे ज्ञात हुआ है कि माता अस्वस्थ है।

ज्योत्स्ना : हूँ, तब तो जाना ही चाहिए अतिथि ! माँ से बढ़कर प्रिय वस्तु इस ससार मे और कोई नही है। क्या यह क्षत्रप आपके पूर्व-परिचित है ?

भोज : हाँ देवि ! यह महामात्य बुद्धिसागर के अनुज हैं, और बुद्धिसागर मेरे घनिष्ठ मित्र ! धार नगरी में मेरा अधिक समय उन्हीं के साथ बीतता है।

ज्योत्स्ना : (**संकोच से**) फिर अब कब आओगे ? क्या हमें भूल जाओगे अतिथि ?

भोज : स्रष्टा की सृष्टि में बहुत कम ऐसे व्यक्ति होते हैं देवि, जिनकी स्मृति हृदय-पटल पर अमिट अक्षरों में अंकित हो जाती है। उन्हीं में तुम और आचार्य हरिहरदास

हैं। **(कुछ सोचते हुए)** बाबा कह रहे थे, तुम धार नगरी देखना चाहती हो। कभी अवश्य आना देवि ! मेरे पास सूचना भिजवा देना, मैं नगर-द्वार पर तुम्हारा स्वागत करूँगा।

ज्योत्स्ना : **(साँस भरकर)** मेरा आना बहुत कठिन है अतिथि !

भोज : **(हँसकर)** मेरा नाम त्रिभुवन है ज्योत्स्ना, अतिथि नहीं ! समझी। हूँ ! पर तुम्हारा आना कठिन क्यों है ?

ज्योत्स्ना : मैं उस नारी-जाति से हूँ, माता-पिता की इच्छायें ही जिसकी इच्छायें हैं। सामाजिक बन्धनों ने जिसे जकड़ रखा है।

भोज : नारी उच्छृंखल न हो सके, बस इससे अधिक और तो कोई बन्धन नारी-समाज पर नहीं है।

ज्योत्स्ना : फिर मैं सोचती हूँ त्रिभुवन, मैं ग्राम-बाला धार की चतुर नागरिकाओं में विचित्र जन्तु-सी लगूँगी।

भोज : चतुर नागरिकायें **(हँसता है)** उनमें साज-शृङ्गार के अतिरिक्त और कोई चतुरता नहीं है। तुम सुशिक्षित, योग्य और सुन्दरी हो। जैसे चन्द्र के सम्मुख सब तारक ज्योति-विहीन लगते हैं, वही दशा तुम्हारी उपस्थिति में उन चतुर नागरिकाओं की होगी। **(सोचते हुए)** लगता है तुमने संस्कृत और प्राकृत का अच्छा अध्ययन किया है।

ज्योत्स्ना : पिता के पास जो पूँजी है, उसमें से तो मुझे अपना भाग ग्रहण करना ही चाहिए। बताओ न त्रिभुवन। अब हमारे ग्राम कब आओगे ?

त्रिभुवन : शीघ्र ही आने की चेष्टा करूँगा देवि !

[तभी भीतर से हेमवती की आवाज आती है, ज्योत्स्ना ! ज्योत्स्ना !]

ज्योत्स्ना : चलूँ अतिथि ! माँ बुला रही है ।

त्रिभुवन : चलूँ मैं भी माँ को प्रणाम कर लूँ । आज प्रातः के पश्चात् उनसे मिला ही नहीं ।

ज्योत्स्ना : आओ वह भी तुम दोनों को इन तीन-चार दिनों में अत्यधिक स्नेह करने लग गई है ।

[दोनों घर के भीतर जाते हैं । रंगमंच पर अन्धकार छा जाता है ।]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—वही । समय—रात । रंगमंच पर दीवाल के आले में रखा एक दीपक टिमटिमा रहा है । तभी एक ओर से भास्कर और भोज बातें करते हुए आते हैं]

भास्कर : मित्र, हमने अधिक दिन यहाँ ठहरकर उचित नहीं किया । तुम किसी के हृदय में अपनी स्मृति का दीप जलाये जा रहे हो । किसी निरीह प्राणी से यह खिलवाड़ अच्छी नहीं । तुम्हारा यह कृत्रिम वेष बुरों को ही नहीं भलों को भी छलता है ।

भोज : (मुस्कराते हैं) मैंने तो किसी निरीह प्राणी को छलने की चेष्टा नहीं की । फिर मैं भी मानव हूँ, मैं भी किसी निराह प्राणी के द्वारा छला जा सकता हूँ ।

भास्कर : (उल्लास से) तब ठीक है ।

भोज : तुम कवि होने से भावना के प्रवाह में शीघ्र ही बह जाते हो ।

भास्कर : और तुम···वह स्वयं गये हो, और व्यंग्य मुझ पर कर

रहे हो ! क्या करूँ मित्र ! किसी की, किसी प्रकार की व्यथा भी ता मुझ से नही देखी जाती। पीड़ित प्राणियों को देखकर मेरा कवि-हृदय अधीर हो उठता है। **(सोचते हुए)** एक बात पूछूँ राजाधिराज !

भोज : फिर राजाधिराज ! हूँ, पूछो क्या पूछना चाहते हो ?

भास्कर : आपके वंश को ब्रह्म-क्षत्रकुलीन क्यों कहते हैं ?

भोज : गाथा तो यह है कि महर्षि वशिष्ठ को राक्षसों ने बहुत कष्ट दिये तब उन्होंने मन्त्रबल से यज्ञ के अग्नि-कुण्ड मे एक वीर पुरुष को उत्पन्न किया। उस वीर पुरुष ने वशिष्ठ के शत्रुओं को मार भगाया। पर अर्थात् शत्रु को मारने वाला होने के कारण उसका नाम परमार पड़ा। अग्नि से उत्पन्न होने के कारण उसे अग्निवंशोय कहा गया। परमार योद्धा और क्षत्रिय था। ब्रह्म ऋषि वशिष्ठ के मन्त्रोच्चारण से उसका जन्म हुआ ! इसीलिए उसके वंश को ब्रह-क्षत्रकुलीन कहते हैं।

भास्कर : यह गाथा तो मैंने सुन रखी है पर क्षमा करें मुझे इसमें कोई तथ्य नहीं दृष्टिगोचर होता।

भोज : **(हँसते हैं)** सोचा तो मैं भी करता। अग्नि से उत्पन्न होने पर क्या उस व्यक्ति का शरीर नहीं जला ? हो सकता है उसने प्रह्लाद की भाँति होलिकावाली चनर ओढ़ रखी हो। वास्तव में इस गाथा से महर्षि वशिष्ठ का ही महत्व बढ़ता है, हमारा नहीं।

भास्कर : उसकी मन्त्र-शक्ति का चमत्कारिक प्रभाव लोगों पर पड़ता है ? फिर महर्षि वशिष्ठ का युग और आपके प्रथम पूर्वज का युग भी तो एक नहीं है।

भोज : हाँ, यह भी विचारणीय बात है। मेरे विचार से अग्नि-

कुण्ड उत्पत्ति की व्याख्या इस प्रकार होनी चाहिए ।

भास्कर : किस प्रकार ?

भोज : बुद्ध धर्म के प्रभाव में आकर क्षत्रियों ने क्षत्रियत्व को तिलांजलि देकर, वाणिज्य इत्यादि दूसरे काम अपना लिये थे । कार्य के अनुसार ही उनकी जाति भी बदल गई होगी । पर जब धीरे-धीरे देश से बौद्ध प्रभाव क्षीण होने लगा, देश पर यवन, शक, हूण इत्यादि विदेशी जातियों के आक्रमण हुए तो देश को वीरों की आवश्यकता पड़ी, योद्धाओं ने फिर शस्त्र सँभाले । अग्नि-पूजक तो आर्य थे ही । वेदवेत्ता ब्राह्मणों ने यज्ञकुण्ड के पास बिठाकर मन्त्रों के द्वारा उन्हें क्षत्रियत्व की दीक्षा दी । उन वीर योद्धाओं ने शत्रुओं को मार भगाया, वह प्रथम तो ब्राह्मण वैश्य दूसरी इतर जातियों से देश की रक्षा के प्रश्न पर इकट्ठे हुए होंगे, अब वह ब्राह्मणों के द्वारा दीक्षित क्षत्रिय थे । पर जन्मजात क्षत्रिय नही थे । इसीलिए इस वंश को अग्नि और ब्रह्म क्षत्रकुलीन कहा गया, और बाद मे यह गाथा वशिष्ठ के साथ जोड़ दी गई ।

भास्कर : मेरा विचार इसके विषय में कुछ और है ।

भोज : वह क्या ?

भास्कर : जन्म की जातीयता को प्राचीन आर्यों ने कोई महत्व नहीं दिया । अब भी ऐसी कुछ विशेष बात नहीं है । ब्राह्मण चाण्डाल का कार्य करने पर जन की दृष्टि में चाण्डाल हो जाता है । उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है । तब चाण्डाल विद्वान हो तो उसे ब्राह्मण क्यों न कहा जाये, फिर उस दिन आपने भी राज-सभा में उस कुम्हार की विद्वतापूर्ण उक्तियों पर ही प्रसन्न होकर

पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रायें दान में दी थीं। उसके पात्र बनाने की योग्यता पर प्रसन्न होकर तो नहीं।

भोज : ठीक है। मैंने उसे विद्वान कहकर सम्बोधित भी किया था।

भास्कर : आपके पूर्वज जहाँ प्रथम श्रेणी के योद्धाओं में आते थे वहाँ कला-साहित्य के प्रेमी, स्वयं सिद्धहस्त साहित्यकार, और विद्वान इसीलिए उन्हें ब्राह्मण की संज्ञा भी मिल गई। और इस वंश का नाम ब्रह्म-क्षत्रकुलीन पड़ा। महाकवि धनपाल से भी एक दिन मेरी इसी विषय पर बातचीत हो रही थी! वह भी इसी मत के समर्थक हैं।

भोज : कवि, कल्पना का जनक, जो कहे सच है। पर मेरे जीवन की एक ही आकांक्षा है कि वर्ण-भेद के प्राचीरों को तोड़कर हम मानव मात्र मानव बनकर जी सकें। (**अवकाश**) सुनो, कल उषाकाल में ही यहाँ से प्रस्थान करना है। अपनी सब वस्तुएँ तो संजो-सँवारकर रख ली हैं न?

भास्कर : सब वस्तुएँ सँभाल ली हैं। आपके आदेश से यह सौ स्वर्ण-मुद्राएँ मेरे पास हैं।

भोज : लाओ, मुझे दो!

[थैली लेकर अपने पास रखते हैं, तभी पटेल और हरिहरदास आते हैं]

पटेल : हाँ तो कल प्रातः जाने का निश्चय दृढ़ है। मेरा विचार था कि अभी कुछ दिन और रहते।

भोज : नहीं पटेल जी! ईश्वर की इच्छा हुई तो फिर कभी आयेंगे। अत्यधिक आवश्यक कार्य के कारण जाना पड़ रहा है।

पटेल : हम ग्रामवासियों पर तो आपने आकर बहुत कृपा की भैया ! हम तो आजीवन आप लोगों को नहीं भूल सकेंगे। समय मिले तो राजाधिराज से मेरी बात कहना। अच्छा रहे, यदि ग्राम के निकट सरिता-तट पर पक्का घाट बन जाये। वर्षा ऋतु में बड़ा कष्ट होता है।

भोज : मैंने कल क्षत्रप कमलेश्वर से यह बात कही थी। प्रत्येक ग्राम के पास जहाँ पनिहारिने पानी भरती हैं या जिस जगह से लोग अपने पशुओं को पानी पिलाते हैं वहाँ पक्के घाट बनवा दिये जाएँ। वह मेरी बात से सहमत हैं। मैं धार जाकर महामात्य से कहकर उन्हें महाराज की आज्ञा भिजवा दूँगा।

पटेल : धन्य हो भैया ! यह आपने हम पर बहुत उपकार किया है।

भास्कर : और बाबा, आपने भी यदि अपनी पाठशाला के विषय में महाराज को कुछ सन्देश भिजवाना हो तो कह दें।

हरिहर : नहीं भैया, मुझे कुछ सन्देश नहीं देना।

भास्कर : कल तो बड़ी-बड़ी योजनाएँ बता रहे थे।

हरिहर : कभी समय मिलने पर महाराज से ही स्वयं इस विषय पर बात करूँगा।

भोज : (**हँसकर**) तुम समझे नहीं भास्कर ! कल बाबा जो योजना बता रहे थे हम वही जाकर महाराज को बता देंगे। आगे उनकी इच्छा पर है। वह चाहेंगे तो यहाँ के क्षत्रप को आदेश भेज देंगे। राज्य की ओर से पाठशाला को उचित सहयोग मिलेगा।

भास्कर : तुम्हारा क्या विचार है कि महाराज पाठशाला की इस योजना को स्वीकार करेंगे नहीं ?

भोज : अवश्य करेंगे। विद्या की प्रखर किरणों से ही तो अविद्
का अन्धकार नष्ट होगा।

पटेल : पण्डित जी की तो इच्छा है, सरिता-तट पर नई पा
शाला बनवाई जाये। चारों ओर घने वृक्ष हों।

भोज : दूर से देखने पर किसी ऋषि का आश्रम प्रतीत हो!

हरिहर : मेरे जीवन का यह एक मधुर स्वप्न है। देवाधिदेव मह
देव की कृपा जब भी हुई तभी यह स्वप्न पूरा हो जायगा

भोज : (झिझकते ए मुद्राओं की थैली आगे बढ़ाते है) बाब
यह हम लोगों की तुच्छ भेंट है। इसे स्वीकार करें।

हरिहर : इसमें क्या है भैया ?

भोज : सौ स्वर्ण-मुद्राएँ हैं।

हरिहर : राम का नाम लो भैया, धन को लेकर मै क्या करूँगा
नहीं, नही ! यह कार्य मुझ से नही होगा !

भोज : आप अतिथि की इच्छा को न ठुकराइये। इस धन
अपने नये विद्यालय की नींव तो डालिए। ग्राम के लो
जगह तो दे ही देंगे विद्यालय के लिए, क्यों पटेल जी ?

पटेल : क्यों नही भैया ! हम तो पंडित जी के सेवक हैं। ह
इन्हें धन, धरतो, परिश्रम हर तरह से सहयोग देने क
प्रस्तुत है। उससे हमारे ही तो बालकों का कल्याण होगा

भोज : अधिक सोच-विचार मे मत पड़ो बाबा, इसे ग्रहण करो
यह मेरा सौभाग्य है, मेरा धन किसी अच्छे कार्य मे लगे
आपके आशीर्वाद से मेरे पास भगवान का दिया हुआ
बहुत कुछ है।

हरिहर : बड़ी विचित्र-सी बात है। मेरी समझ में तो कुछ आ ह
नही रहा। पहली बार ही ऐसा जटिल प्रश्न मेरे सम्मु
आया है।

पटेल : स्वीकार कर लो पंडित जी ! अस्वीकार करके अतिथि के हृदय को दुःखी न बनाओ।

हरिहर : अच्छा ! जैसी तुम सब की इच्छा। लाओ **(मुद्राओं की थैली पकड़ता है।** (**हँसकर**) हमारे लिए तो तुम ही राजा भोज बन गये। पटेलजी, अब तुम कल पाठशाला के लिए धरती ठीक-ठाक कराओ। इन स्वर्ण-मुद्राओं को भी अपने पास रख लो। और कल दूसरे ग्रामो के पटेलों को भी समाचार भेज दो। उनके बालक भी तो यहाँ पढ़ेंगे ही, उनसे भी कुछ न कुछ सहयोग लूँगा।

पटेल : आपको सभी सहयोग देगें बाबा, आप निश्चिन्त रहें सबके हृदय में आपके लिए बहुत सम्मान है।

हरिहर : बस तो फिर सब एक-दो दिन में मिल बैठें, ऐसा प्रबन्ध करो। बस अब पाठशाला का कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाना चाहिए।

[दूर कहीं मृदंग के बजने की आवाज सुनाई देती है]

पटेल : अरे लो मैं तो भूल ही गया, चलो न भैया ! नाटक प्रारम्भ हो रहा है।

हरिहर : पहले लोक-गीत होंगे, फिर एक छोटी-सी प्राकृत नाटिका खेली जायगी।

भोज : चलिए हम तो स्वयं ही प्रतीक्षा कर रहे थे, पर बुलाने कोई आया ही नहीं।

पटेल : मैं आया तो इसी उद्देश्य से था पर यहाँ आकर बातों में उलझ गया। आओ चलें।

[चारों उठकर रंगमंच से बाहर चले जाते हैं]

[पटाक्षेप]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[समय—मध्याह्न। स्थान—विन्ध्य का पहाड़ो प्रदेश। विन्ध्य प्रदेश मे महाराज भोज एक ब त बड़ी झील बनवा रहे है। घाटी के बीच मे राजाधिराज का अस्थायी निवास स्थान है। नेपथ्य में झील की खुदाई के कारण पत्थरों के टूटने और फावड़ों इत्यादि के चलने का स्वर सुनाई पड़ रहा है। मंच सजा हुआ है। बीच में महाराज के बैठने का स्थान है। चारों ओर सुन्दर मूढे पड़े है। मंच पर वृद्ध कवि धनपाल और महामात्य बुद्धिसागर बातें करते हुए आते है]

बुद्धिसागर : निर्माण-कार्य इन दिनों वेग से चल रहा है।

धनपाल : युद्ध की अपेक्षा निर्माण की दिशा अच्छी है वत्स ! मुझे प्रसन्नता है कि भोजराज की युद्धों में अधिक रुचि नही है।

बुद्धिसागर : (हँसकर) महाकवि, क्या आपके हृदय में जैन धर्म के प्रति जो आकर्षण है वह यह बातें नहीं कहलवा रहा। मेरा विश्वास है, युद्ध मे राजलक्ष्मी प्रसन्न होती है विजेता बनने से राजकोष मे धन आता है।

धनपाल : और एक युद्ध मे धन व्यय कितना होता है, इस बात को भूल जाते हो। अब निर्माण के विषय में सोचो। यह

भोजसागर बनकर तैयार होगा। जल मिलेगा, कृषक खिल उठेंगे, कृषि लहलहा उठेगी। एक बार में चार गुना अधिक अन्न उत्पन्न होगा। कृषि का छठा भाग कर के रूप में राज्य को मिलता है। कर अधिक आयेगा, क्या उससे राज्य-कोष नहीं भरेगा ?

बुद्धिसागर : अनेक युद्धों के विजेता आप आज कैसी बातें कर रहे हैं !

धनपाल : मैं युद्ध का सदैव विरोधी रहा हूं। पक्ष मे केवल उस समय हूं जब बहुत ही अधिक युद्ध की आवश्यकता हो, मान-सम्मान की रक्षा के लिए जब और किसी तरह का कोई समझौता न हो सकता हो या देश पर किसी ने आक्रमण कर दिया हो तो। तनिक से परिहास मे खीझ कर युद्ध कर बैठना पागलपन है।

बुद्धिसागर : समय के अनुसार मानव के दृष्टिकोण भी बदल जाते है। आप युद्ध के विरोधी होते जा रहे है। और जो कभी दिगम्बर जैन साधु थे वह कुलचन्द्र आज मालव राष्ट्र के सेनापति हैं। गुजरात वालों को एक युद्ध मे हराकर उन्होंने सेनापति बनने की योग्यता का परिचय भी दे दिया है।

धनपाल : मानव परिवर्तनशील है वत्स ! कुलचन्द्र जीवन भर अभावों का आसव पीते रहे है। जीवन की कठिनाइयों से दुखी होकर साधु नहीं बन गये। वह वैराग्य की भावना से प्रेरित होकर साधु नही बने थे। वह जानते थे, इस देश की जनता श्रद्धाशील है। साधु-सन्यासियों के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा है। उन्होंने बिना परिश्रम पेट भरने का यह सरल मार्ग चुन लिया। न जाने कितने आलसी व्यक्ति इस तरह के साधु बने हुए है। सच्चे साधक और तपस्वी साधु के रूप में बहुत ही कम मिलेंगे।

वृद्धिसागर : आप और सम्राट ही तो उन्हें खोजकर लाये थे।

धनपाल : हाँ, एक बार मैं और महाराज छद्मवेश में धार नगरी का निरीक्षण कर रहे थे। यह हृष्टपुष्ट व्यक्ति साधु वेश में घूम रहा था। महाराज ने उसे देख व्यंग्य से कहा—'जीवन सफल कर रहे हो साधु ?' इस पर कुलचन्द्र ने उत्तर दिया—'नहीं बन्धु यह जीवन तो व्यर्थ ही जा रहा है। न मैंने युद्ध में अपनी वीरता का प्रदर्शन ही दिया है और न ही गृहस्थ सुख का उपभोग किया।'

वृद्धिसागर : फिर महाराज ने क्या कहा ?

धनपाल : उससे पूछा—'तुम्हारे में कितनी शक्ति है ? युद्ध में क्या कर सकते हो ?' इस पर उसने गर्व से कहा—'मेरे पास सेना हो तो मैं गौड़ देश से लेकर दक्षिणा-पथ तक एक दम राज्य स्थापित कर सकता हूँ। महाराज को सेनापति सोढ के अभाव की पूर्ति करनी थी, इस बात पर प्रसन्न होकर उन्होंने उसे अपना सेनापति नियुक्त किया।

वृद्धिसागर : कुलचन्द्र ने भी अपने वचन की लाज रक्खी। गुजरात को जीतकर अपार धन लाया। राज्य-कोष की वृद्धि हुई।

धनपाल : राजाधिराज का प्रतिबन्ध न हो तो वह युद्ध ही करता रहे (**हँसते है**) भोज कुशाग्रबुद्धि और दूरदर्शी दीखते है। व्यक्तियों को परखने मे भूल नही करते। राजकन्याओ को छोड़कर उन्होंने कृपक-बाला को अपनी पत्नी बनाया। कितनी विदुषी और सुसंस्कृत है देवी ज्योत्सना। उनसे बात करने में यह अनुभव होता है जैसे साक्षात देवी सरस्वती बोल रही हों।

वृद्धिसागर : और वह दस्युराज भीमा कितना सभ्य व्यवित बन गया है !

धनपाल : सम्राट के विश्वास की भी चरमा सीमा है ! उन्होंने उसे

अपना अंग-रक्षक नियुक्त किया है।

[**तभी भीमा का प्रवेश। बुद्धिसागर उसे देखकर कहते है**]

बुद्धिसागर : महाराज को हमारे आगमन की सूचना दो !

भीमा : जी हां ! वह और महारानी दोनों आ रहे हैं।

[**तभी भोज और ज्योत्स्ना आते हैं। जय शिव की ध्वनि के साथ सब उनका स्वागत करते है।**]

भोज : (**उल्लास से**) महाकवि ! आज ही मैं आपके अभाव को अनुभव कर रहा था, अच्छा हुआ तुम आ गये। आखेट के समय मेरे मस्तिष्क में एक बात आई थी।

धनपाल : वह क्या महाराज ?

भोज : यह बताओ धनपाल, मृग आकाश की ओर क्यों उछलता है और सूकर धरती क्यों खोदता है ?

धनपाल : (**विनम्रता से मुस्कराकर**)इसका बड़ा सरल उत्तर है देव! आकाश की ओर मृग इसलिए उछलता है कि वह गगन-बिहारी चन्द्रमा के रथ में जुते हुए मृगों से सहायता चाहता है, और सूकर इसलिए धरती खोदता है कि वह पाताल में भू को उठाने वाले वाराह भगवान से सहायता की आशा रखता है।

ज्योत्स्ना : धन्य हो महाकवि ! अति सुन्दर उत्तर दिये !

भोज : अति उत्तम एक प्रश्न और है धनपाल।

धनपाल : आज्ञा कीजिये देव !

भोज : लौटते समय कुछ मृग घास चर रहे थे, वह मुझे देखकर भागे नहीं, करुणा से मेरी ओर देखते रहे। मैंने भी उन्हें कुछ नहीं कहा, मैं अधीर होकर लौट आया।

धनपाल : आपने उनका निवेदन स्वीकार कर लिया महाराज !

भोज : क्या निवेदन कर रहे थे वह ?

धनपाल : वह कह रहे थे अपने शत्रु को एक तिनका दाँतों तले दबाने पर तुम क्षमा कर देते हो, उसके लिए दयालु हो उठते हो और हमारे लिए इतने कठोर क्यों, हम तो आपके शत्रु भी नहीं है। फिर हर समय मुख में तिनके अर्थात् घास लिये रहते है। इस पर भी हम पर करुणा नही दिखाते !

ज्योत्स्ना : अत्युत्तम !

बुद्धिसागर : धन्य हो महाकवि !

भोज : तुम सच कहते हो महाकवि ! अब मै कभी आखेट के लिए नहीं जाऊँगा।

ज्योत्स्ना : धार के और कोई विशेष समाचार तो नहीं हैं मंत्रिवर ! राजमाता तो प्रसन्न थी।

बुद्धिसागर : वहां पर सब ठीक-ठाक है महारानी ! राजमाता प्रसन्न औरसकुशल थीं, किन्तु अपने पास से आप लोगो की दूरी को तो सहन नहीं कर सकती। संदेश दिया है उन्होंने।

भोज : क्या आज्ञा है !

बुद्धिसागर : माँ की इच्छा यही होती है देव कि उसकी संतान उसके सामने रहे। राजमाता की यही आज्ञा थी कि आप उनसे जाकर मिल आयें।

भोज : यहाँ आये मुझे अभी एक मास भी नहीं हुआ और माँ मेरे लिए चिन्तित हो उठीं। माँ का हृदय है न ? (**साँस भरकर**) माँ माँ ही होती है।

बुद्धिसागर : आप धार जायें। मै यहां पर भोजसागर का काम देखता रहूँगा। आपका राजधानी में रहना आवश्यक है।

भोज : क्यों ? किसी के आक्रमण की आशंका है क्या ?

बुद्धिसागर : नहीं देव ! मालव नरेश से शत्रुता मोल लेना कौन अभागा

चाहेगा ? मेरे कहने का अर्थ था कि वहाँ आजकल कला और साहित्य की चर्चा कुछ कम हो रही है। साहित्य और संगीत की सभायें आपके बिना सूनी लगती है। कलाकार और विद्वान आनन्द का अनुभव नही करते। एक दिन सब लोग इस बात पर दुख प्रगट कर रहे थे।

भोज : इसमें दुखी होने की कौन सी बात है ! सब जानते है कि मै एक विशाल सरोवर बनवा रहा हूँ। मेरी प्रजा पानी के बिना दुखी है। राजा होने के नाते सबसे पहले मेरा यही कर्तव्य है कि मै अपनी प्रजा के दुखों को दूर करूँ।

ज्योत्स्ना : वह तो ठीक है महाराज ! पर आप कला के परम उपासक है, स्वयं कवि है। आपकी इस उपेक्षा से कला की देवी भी तो आप पर रुष्ट हो सकती है।

भोज : (**हँसकर**) नहीं रानी, कला की देवी मुझ पर रुष्ट नहीं हो सकती, वह जानती है कि मै एक राजा हूँ। मुझे सब बातों से पहले अपनी प्रजा का ध्यान रखना है। (**उल्लास से**) अगर यह सरोवर बन गया तो यहाँ की सभी ऊसर धरती उपजाऊ हो जायेगी। तब मेरी प्रजा को अन्न के लिए चिन्तित नहीं होना पडेगा।

ज्योत्स्ना : पर आपकी प्रजा खाती-पीती है, अकाल तो कही नहीं पड़ रहा।

भोज : पर कभी भी पड़ सकता है। अब तुम्हीं देखती हो प्रतिवर्ष कितना धन खर्च करके हम दूसरे मित्र राज्यों से अन्न प्राप्त करते हैं। हम स्वयं ही अपने देश को उपजाऊ क्यों न बनायें ? यदि देश धन-धान्य से भरपूर होगा, प्रजा सुखी होगी, तो कला और साहित्य की साधना और भी अच्छे ढंग से हो सकेगी। ऐसा लगता है रानी

कि तुम्हें यहाँ का वातावरण पसन्द नहीं है । तुम धार जा सकती हो ।

ज्योत्स्ना : नहीं देव ! यह आप क्या कह रहे हैं । जहाँ आप हैं वह मेरे लिए राजधानी ही है । वैसे आपके पूर्वजो ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया दिखता ! क्या उनका अपनी प्रजा के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं था ?

भोज : उनकी इच्छा उनके साथ गई, मेरी इच्छा मेरे साथ है । वे वे थे, मैं मैं हूँ । शायद उन्हें युद्धों से ही अवकाश नहीं मिलता था । युद्ध तो जब चाहो तब हो सकता है रानी ! पर निर्माण-कार्य हर समय नहीं हो सकता । मैं तरह-तरह से प्रजा को सुखी और सन्तुष्ट देखना चाहता हूँ । मैं चाहता हूँ, मेरी जनता में विद्या का प्रकाश फैले, कला के प्रति उसमें रुचि पैदा हो, इसलिए मैंने धार मे सरस्वती-मन्दिर का निर्माण करवाया है । वह खाती-पीती और खुशहाल हो, भूख और प्यास नामक दैत्यों से उसे छुट-कारा मिले, इसलिए इस सागर को बनवा रहा हूँ । मैं यहाँ की ऊसर सूखी धरती को हरे-भरे उद्यान के रूप में देखना चाहता हूँ ।

ज्योत्स्ना : पर यह काम तो आपके कर्मचारी भी कर सकते हैं । वहाँ से भी आप इस सागर को बनवा सकते हैं । आपकी यहाँ कोई आवश्यकता नही । आप सम्राट् हैं, अतः आपको राजधानी में रहना चाहिए ।

भोज : मुझ में और दूसरे राजाओं में यही तो अन्तर है । मैं आँखों से अधिक काम लेता हूँ, वे कानों से अधिक काम लेते हैं । मैं किस समय कहाँ किस वेष में अपनी प्रजा को मिल जाऊंगा कुछ कहा नहीं जा सकता । (हँसता है)

तुम्हें भी तो एक दिन एक श्रेष्ठि युवक के रूप में ही मैं मिला था। अगर वह रूप न बनाता तो तुम्हारे-जैसा नारी-रत्न कहाँ से प्राप्त होता ! क्यों याद है न वह दिन ?

ज्योत्स्ना : अच्छी तरह ! **(शरमाती है)** हम लोगों से उस समय असल में बड़ी भूल हुई देव ! वैसे मैं पहिचान तो गई थी !

भोज : पर पूरी तरह से नहीं ! लजाने की इसमें क्या बात है ! तब तुम लोगों को क्या पता था कि भोज तुम्हारे सामने ही बैठा हुआ है। आओ अब चलकर श्रमिकों से कुछ देर बातें करें।

बुद्धिसागर : मुझे मेरी बात का उत्तर अभी तक नहीं मिला। राजाधिराज राजमाता की हार्दिक इच्छा है कि आप कुछ दिनों के लिए धार अवश्य आयें।

ज्योत्स्ना : हाँ कह दो न महाराज ! कुछ दिनों वहाँ रहकर फिर यहाँ चले आना।

भोज : अच्छा महामन्त्री, कुछ ही दिनों में हम वहाँ आयेंगे।

बुद्धिसागर : यदि महाराज की आज्ञा हो तो तब तक मैं भी यहाँ पर रह लूँ।

भोज : **(हँसते हैं)** बुद्धि के सागर होते हुए भी कई बार मूर्खतापूर्ण बातें कर जाते हो। भला तुम्हीं सोचो, हम दोनों एक साथ राजधानी से अधिक दिनों तक अलग कैसे रह सकते हैं ? एक-न-एक का वहाँ रहना परम आवश्यक है।

बुद्धिसागर : आप मुझे कुछ समय एकान्त में बातें करने के लिए दें, राजकाज सम्बन्धी कुछ विशेष बातें करनी हैं मुझे आप से उसके पश्चात् ही मैं यहाँ से चला जाऊंगा।

भोज : **(हँसते हुए)** विचित्र व्यक्ति हो, कहाँ तो हमारे साथ जाने की इच्छा प्रकट कर रहे थे और अब आज ही लौटने की

इच्छा बना ली। दो-चार दिन पश्चात् चले जाना। चलो आप लोगों को यहाँ के प्रधान शिल्पी से मिलाये।

[सब उठकर जाते हैं, और धीरे-धीरे रंगमंच पर अन्धकार छा जाता है]

दूसरा दृश्य

[स्थान—वही। राजाधिराज भोज, महाकवि धनपाल और रानी ज्योत्स्ना बैठे बातें कर रहे हैं]

धनपाल : आप तो राजाधिराज होकर भी तपस्वियों की भाँति जीवन बिता रहे हैं। क्या आपका हृदय यहाँ के वातावरण से उद्विग्न नहीं हो उठता?

भोज : नहीं महाकवि, यहाँ के जीवन में अत्यधिक शान्ति है। राजधानी-जैसा कोलाहल नहीं। आजकल मैं यहाँ बैठकर सरस्वती कण्ठाभरण नामक ग्रन्थ की रचना कर रहा हूँ। साथ-ही-साथ इस विशाल सरोवर का कार्य भी देखता जा रहा हूँ।

धनपाल : सरोवर कह रहे हैं, इसे जल से भर जाने पर यहाँ एक विशाल सागर का-सा दृश्य उपस्थित होगा।

भोज : इस पर्वत के तीन सौ पैंसठ झरने और वेत्रवती नदी के जल को यहाँ ला रहा हूँ।

धनपाल : इसे पूर्ण होने में अभी कई वर्ष लगेंगे। सुदूर काश्मीर राज्य के कपरेश्व स्थान में जो आप पापसूदन नामक तीर्थ बनवा रहे थे उसका क्या हुआ?

भोज : वह बन चुका है। एक सप्ताह हुआ काश्मीर से पद्मराज

के चर ने यहां आकर हमें यह शुभ सूचना दी थी !

ज्योत्स्ना : यह सूचना यहाँ पहुँचते ही महाराज ने बीस सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं शिल्पियों, श्रमिकों और उनके बालकों को बाँटी। बहुत-सा धन ब्राह्मणों को दान मे दिया । भोजपाल के क्षत्रप उदयादित्य और कवि भास्कर के द्वारा यह सूचना हमने धार भी भिजवाई है।

धनपाल : हमारी उनसे भेट नहीं हुई । हमारे वहाँ से चलने तक वह धार पहुंचे नही थे। पापसूदन के बनने पर इतना धन दान में दिया गया तब यह सागर बनने पर तो राजकोष में कुछ रहेगा ही नही।

भोज : राजकोष तो अनेक बार समाप्तप्राय हुआ है। इसी बात को लेकर मुझ में और कोषाध्यक्ष रोहक में जो वाद-विवाद हुआ था वह आपको ज्ञात ही है।

ज्योत्स्ना : (**उत्सुकता से**) क्या था वह वाद-विवाद ? मै भी तो सुनूं !

भोज : तुमने देखा होगा, राजसभा के मुख्य द्वार के साथ वाली भित्ति पर एक विशाल शिला लगी हुई है।

ज्योत्स्ना : हाँ, जिस पर प्रजाजन आपके लिए अपनी कथा या जिज्ञासा लिख जाते है, और आप उसके नीचे अपना उत्तर लिख देते है।

धनपाल : रोहक देखते कि विद्वानों और निर्धनों को अत्यधिक धन महाराज दान में दे देते है। उन्होंने इससे तो कुछ नही कहा पर उस शिला पर लिख दिया—'आपत्तिकाल के लिए धन-रक्षा करनी चाहिए।' किन्तु नीचे अपने हस्ताक्षर नही किये।

भोज : मैंने पढ़ा और उसके आगे लिख दिया—'भाग्यवान पर विपत्ति नही आती।' इस पर उसने दूसरे दिन लिखा—'सम्भवतः कभी भाग्य ही रुष्ट हो जाय तब···'

ज्योत्स्ना : इससे पढ़कर आपने क्या लिखा देव !

भोज : इसके उत्तर में मैंने यह लिखा ज्योत्स्ने ! —'अगर भाग्य ही रुष्ट हो जायेगा तब संचित किया हुआ धन भी नष्ट हो जायेगा।'

ज्योत्स्ना : इस पर कोषाध्यक्ष ने क्या लिखा ?

धनपाल : कुछ नहीं, महाराज का निश्चय दृढ़ देखकर क्षमा माँग ली। वह अपने ढंग से महाराज की मंगल कामना ही चाहता था।

ज्योत्स्ना : इस तरह के मधुर वाद-विवाद राजसभा में प्राय ही होते रहते है ?

धनपाल : महाराज के जीवन से अनेक हृदयहारिणी रोचक गाथायें लिपटी हुई है।

भोज : (हँसते है) सब कुछ होते हुए भी मुझे अब इन गाथाओं से एक प्रकार का भय लगने लगा है।

धनपाल : वह क्या मालवेश ?

भोज : अब वह गाथाएँ राजसभा से निकलकर जनता तक पहुँचने लगी है।

ज्योत्स्ना : इससे तो आपकी यशचन्द्रिका युगों-युगों तक अक्षुण्ण रहेगी।

भोज : देवि ! पर मुझे एक आशंका और होती जा रही है। जनता में भी तो कई गाथाकार है, उन्होंने कई गाथाये अपने मन से ही बनाकर मेरे जीवन के साथ लगा दी है। छद्म वेष मे घूमकर मैंने कई ऐसी गाथाएँ सुनी है।

धनपाल : यशस्वी नरेश ! अभी तो आने वाले युग में बहुत सी गाथाये आपके नाम से सम्बन्धित हो जायेंगी। देश-देशान्तरों में घूम-घूमकर यह गाथाये आपके यश और दान

का प्रचार करेगी । जनप्रिय नरेश के प्रति ही जनता गाथायें गढती है । प्रत्येक के लिए नहीं । (**हँसकर**) चलो यहाँ रहकर तो आप अब इन नूतन बनने वाली गाथाओं से दूर हैं ।

ज्योत्स्ना : नहीं, ऐसी बात नहीं है । यहाँ भी याचकों और विद्वानों से घिरे ही रहते हैं ।

धनपाल : कमल चाहे भी जहाँ हो भ्रमर तो उसे ढूंढ़ ही लेंगे ।

भोज : हास-परिहास, दूसरों की बुद्धि परखना, अपनी बात कहना, अपने जीवन का तो यह एक कार्यक्रम बन गया है । मैं कई बार सोचा करता हूँ धनपाल ! मैं किसी साधारण परिवार में उत्पन्न होता तो कितना सुखी रहता । राज्य के झंझटों से दूर किसी वनस्थली में बैठकर मैं अपनी काव्य-साधना करता ।

धनपाल : तब यह विशाल सागर कौन बनवाता, आपकी प्रजा की इतनी लगन से देख-भाल कौन करता । हमारी तरह आप भी जीविका के लिए राजाश्रय खोजते-फिरते । वैसे अभावों का आसव प्रत्येक मानव को पीना पड़ता है देव ! अपूर्णता का ही दूसरा नाम जीवन है । पूर्णता मृत्यु के अतिरिक्त और कहीं नहीं है ।

भोज : सच कहते हो महाकवि, जीवन में अभाव न हों तो जीवन सूना-सूना लगने लगे ।

धनपाल : महामात्य किधर गये हैं ?

भोज : शिल्पियों से आवश्यक सामग्री की सूची लेने गये हैं । आते ही होंगे । (**कुछ सोचते हैं**) एक दिन मैं श्रमिक बना हुआ श्रमिकों के कार्य का निरीक्षण कर रहा था । एक श्रमिक-बाला को मैंने मिट्टी का टोकरा उठाते हुए

कहा—'तुम केतकी की तरह पीत वर्ण क्यों हो ?' सम्भवतः वह मुझे पहचान गई थी। बोली—'सभी तो अपने जीवन मे राजाधिराज भोज नहीं है।' मै लज्जित हो गया।

धनपाल : उसकी इस स्पष्टोक्ति पर आपने उसे पुरस्कार नही दिया ?

भोज : मै उसका नाम ज्ञात कर आया था। तत्पश्चात देवि ज्योत्स्ना स्वयं उसे सौ स्वर्ण-मुद्राये देकर आई ? (**हँसते है**) मै चाहता हूँ देवि ज्योत्स्ना भी मुक्त हस्त से धन लुटाने का अभ्यास करे। नही तो यह भी किसी दिन मुझ पर कोषाध्यक्ष रोहक की तरह रोक लगायेगी।

ज्योत्स्ना : मैने तो कभी ऐसी चेष्टा नही की प्रिय ! फिर ऐसा लांछन मुझ पर क्यों ? उस दिन उस विद्वान ब्राह्मण को ५०० मुद्रायें आपने प्रदान की तो सौ मुद्रायें मैने भी अपनी इच्छा से दी। मै कृपण तो नही हूँ। (**रूठने की चेष्टा करती है**)

भोज : तनिक से परिहास से रुष्ट हो गई ज्योत्स्ना ! महाकवि से पूछो राज-सभा में कैसे-कैसे विचित्र हास-परिहास हम लोग एक दूसरे पर करते है। अगर जीवन में हँसना चाहती हो तो दूसरों को भी हँसने का अवसर दो। मै तो हास-परिहास के समय यह भूल जाता हूँ कि मै मालवेश भोज हूँ।

धनपाल : कई बार लोग अनकहनी बात भी कह जाते है।

भोज : दामोदर महता को सम्भवतः तुमने नही देखा।

ज्योत्सना : सम्भवतः नही। कौन है वह ?

भोज : वह गुजरात नरेश की ओर से हमारी सभा में राजदूत है। कुरूप किन्तु विद्वान और प्रत्युत्पन्नमति। जब वह प्रथम बार राज-सभा में आये तो मैंने उनके मुख को

देखकर परिहास के स्वर में कहा—'दूसरे राजाओं की सभा में भेजने के लिए तुम्हारे-जैसे कितने सांधिविग्रहिक दूत तुम्हारे राजा के पास है।' वह मेरा भाव समझ गये। उन्होंने कहा—'वहाँ पर मुझ-जैसे अनेक दूत है। उनकी तीन श्रेणियाँ हैं। उत्तम, मध्यम और अधम! जैसा राजा हो उसके पास वैसा ही दूत भेजा जाता है। इसका अर्थ यह था, यदि मैं उसे अधम समझता हूँ तो मै स्वयं अधम हूँ। मै उसके इस वादचातुर्य पर प्रसन्न हुआ।

धनपाल : और राजाधिराज ने उसे बहुत सा धन पुरुस्कार स्वरूप दिया। महाराज उस विद्वान की गाथा तो बीच में ही रुक गई, जिसे आप दोनों ने पुरस्कार दिया था।

ज्योत्स्ना : एक दिन मै और महाराज प्रातःकाल सरोवर के तट पर घूम रहे थे। वहाँ एक विद्वान ब्राह्मण ईश्वरोपासना कर रहा था। महाराज ने उसे सुनाकर कहा—'हमारे सौभाग्य से आज यहाँ कोई विद्वान पधारे है।' मैने कहा—'विद्वत्ता की परीक्षा ले लीजिये।' तभी महाराज ने उसकी ओर देखकर सरोवर मे तीन चुल्लू पानी पिया। यह देखकर उस ब्राह्मण ने एक पत्थर उठाकर जल में फेंक दिया। वह परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

धनपाल : इस सब बात का अर्थ क्या हुआ?

भोज : मैने तीन चुल्लू पानी पीकर उससे कहा कि तुम्हारे पूर्वज अगस्त्य ने तीन चुल्लू में समुद्र पी लिया था! तुम इस सरोवर का जल ही पीकर दिखाओ! इस पर उसने जल में पत्थर फेंककर उत्तर दिया—'तुम्हारे पूर्वज राम ने समुद्र पर पर्वत तैराये थे! तुम यह पत्थर ही तैराकर दिखाओ!' अर्थात् न आज पहले जैसे ब्राह्मण है न

क्षत्रिय ।

धनपाल : प्रश्नोत्तर दोनों ही उत्तम रहे ।

| तभी नपथ्य में राजाधिराज की जय हो की ध्वनि गूंजती है |

भीमा : **(प्रवेश करके)** महाराज द्वार पर आया हुआ एक भिक्षुक आप से भेट करना चाहता है ।

भोज : सादर ले आओ !

| तभी हाथ मे खप्पर लिये हुए एक कृशकाय व्यक्ति प्रवेश करता है |

भोज : प्रसन्न तो हो ।

भिक्षुक : सब आप की कृपा है महाराज !

ज्योत्स्ना : आपका निवास-स्थान कहाँ है ?

भिक्षुक : कैलाश पर्वत ! वही से आ रहा हूं ।

भोज : **(भिक्षुक की ओर ध्यान से देखते है)** देवाधिदेव शिव तो प्रसन्न है !

भिक्षुक : उनकी प्रसन्नता का प्रश्न ही नही उठता महाराज ! उनकी तो मृत्यु हो गई है । **(सब भिक्षुक की ओर देखते है)**

भोज : कब ? किस तरह ?

भिक्षुक : शताब्दियों से क्षीण होते आ रहे थे । अब इस युग मे उनकी मृत्यु हुई है ।

भोज : वह कैसे ?

भिक्षुक : सुनिये महाराज ! हरिहर के रूप में उनकी आधी देह विष्णु ने ग्रहण करली, अर्द्धनारीश्वर के रूप में आधी देह पार्वती ले गई । उनकी सम्पत्ति और गुण दूसरों ने बाँट लिये ।

भोज : उसे कौन लोग ले गये ब्राह्मण !

भिक्षुक : गंगा समुद्र में जा मिली, चन्द्रमा आकाश ने ले लिया, शेषनाग पाताल चले गये ! रह गये गुण, दान, शीलता, वीरता, विद्वत्ता और प्रभुत्व—वह सब आपने ग्रहण कर लिया। इस प्रकार उनकी मृत्यु हुई राजन् !

धनपाल : धन्य हो विप्र ! विद्वान हो !

भोज : (**ऊँचे स्वर में**) भीमसेन ! भीमसेन !

भीमा : (**आते हुए**) आज्ञा स्वामी !

भोज : इस भिक्षुक का भिक्षापात्र स्वर्ण-मुद्राओं से भरदो। भविष्य में कभी भी किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझ से आकर कह दें विप्र !

भिक्षुक : महाराज की जय हो !

[**यह कहकर भीमा के साथ जाता है**]

भोज : (**साँस भरकर**) वाह री निर्धनता तुझ से बढ़कर भी कोई अभिशाप नहीं इस विश्व में ! (**अपनी जगह से उठते है**) आओ महाकवि, तुम्हें यहाँ के प्राकृतिक दृश्य दिखलायें।

धनपाल : चलिए महाराज !

[**तीनों जाते है। रंगमंच पर अन्धकार छा जाता है**]

तीसरा दृश्य

[स्थान—वही । भोज और प्रधान शिल्पी वसुसेन बातें करते हुए आते हैं]

भोज : यह समझ लो वसुसेन, यह भोजसागर हम दोनों की कीर्ति-लता को सींचेगा । कहीं भी कोई त्रुटि रह गई तो आने वाली पीढ़ियाँ हम दोनों का उपहास उड़ायेंगी । अपने कला-कौशल की चरम-सीमा तुम्हें यहाँ दर्शानी है ।

वसुसेन : दिन-रात इस पर्वत की गोद में उन्मादियों की तरह घूमता हुआ यही सोचता रहता हूँ देव ! किस तरह वे असंख्य झरने इसमें मिलाये जायें ? किस भाँति वेत्रवती के प्रवाह को इधर लाया जाय ? मुझे आज-कल इन बातों के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं है । यह मानता हूँ, कार्य कठिन है, पर मैं निराश नहीं हूं ।

भोज : शुभ लक्षण है ; कलाकार की अकर्मण्यता ही उसकी मृत्यु है । निरन्तर विकासमयी साधना ही उसका जीवन है । वर्षों से यहाँ अपने परिवारों से अलग रहते हुए शिल्पी उद्विग्न तो हो उठते होंगे ।

वसुसेन : सामूहिक रूप से तो यह प्रश्न कभी मेरे सम्मुख उपस्थित नहीं हुआ देव ! वैसे अगर कभी किसी ने कुछ दिनों का अवकाश माँगा है तो मैंने कभी नाहीं नहीं की । किन्तु अब तो बहुत से लोग अपने परिवार भी यहाँ ले आये हैं । इस तलहटी में श्रमिकों और शिल्पियों का एक अच्छा सुन्दर-सा नगर बस गया है । आस-पास के ग्रामीणों ने यहाँ आकर कुछ हाट भी खोल ली है । भोजसर की संज्ञा भी इस ग्राम को मिल गई है ।

भोज : समझे, हम एक दिन उधर गये थे, किन्तु हमें यह ज्ञात नहीं था कि यहाँ केवल शिल्पी और श्रमिक ही रहते हैं। (**हँसते है**) इस प्रकार तो अनेक ग्राम बसा जाओगे अपने जीवन मे।

वसुसेन : वह किस प्रकार राजाधिराज ?

भोज : जहाँ जाओगे, अपने परिवार को साथ लेकर ही तो जाओगे और तुम्हारे परिवार मे सहस्रों से भी अधिक सदस्य है !

वसुसेन : (**समझता आ**) हाँ, ये सब शिल्पी और श्रमिक मेरे परिवार के सदस्य ही है।

भोज : अब बोलो, जहाँ जाओगे वहाँ नूतन ग्राम बनेगा या नही ?

वसुसेन : वह तो निश्चित है देव !

भोज : यहाँ का कार्य समाप्त कर लो, फिर चित्तौड़ में मुझे अपने आराध्य देव महादेव का विशाल मन्दिर बनवाना है। तुम वास्तु-कला के आचार्य होने के साथ-साथ प्रसिद्ध मूर्तिकार भी तो हो।

वसुसेन : सब आपकी अनुकम्पा है देव ! आज मै सेवा में इसीलिए उपस्थित हुआ था। प्रबल शिलाओं पर हमने कुछ मूर्तियाँ उतारी है। अच्छा रहता यदि आप उनका निरीक्षण कर लेते।

भोज : अभी ?

वसुसेन : जब आपके पास अवकाश हो !

भोज : मध्याह्न के पश्चात् ! (**सोचते हुए से**) यहाँ किसी तरह का कष्ट तो नही है आप लोगों को ?

वसुसेन : नही देव, आपके होते हुए हमें कष्ट कैसा ! आप तो स्वयं ही हम लोगों का बहुत ध्यान रखते हैं।

[**तभी ज्योत्स्ना आती है**]

ज्योत्स्ना : ओह, आप यहां हैं और मैं सागर-तट पर आपको खोजने गई थी।

भोज : मैं कुछ समय पूर्व वहीं था । स्वतः ही प्रधान शिल्पी से बातें करता हुआ इधर आ गया। धनपाल और बुद्धिसागर किधर हैं ?

ज्योत्स्ना : **(तरु की छाया में)** तरु की छाया में बैठकर महाकवि धनपाल जी अपने शिष्य बुद्धिसागर को सदुपदेश दे रहे हैं, और बुद्धिसागर दत्तचित्त होकर सुन रहे हैं । और सुनाओ महाशिल्पी वसुसेन प्रसन्न तो है ?

वसुसेन : सब आपकी कृपा है महारानी ! **(भोज से)** देव ! मैं आपकी सेवा में उपस्थित तो किसी और ही विशेष कार्य से हुआ हूं। हमारा विचार था कि आप अभी यहाँ कुछेक मास रहेंगे, पर कल महामात्य से ज्ञात हुआ कि आप राजधानी जाने का विचार कर रहे हैं ।

भोज : कुछ दिन तो यहाँ हूँ यदि कोई विशेष बात ही न हो जाये तो, फिर आप समझते ही हैं राजधानी से मेरा अधिक दिन दूर रहना भी उचित नहीं । राजनीति षड्यन्त्रों की जननी है । कब, कहाँ, क्या हो जाय कुछ कहा नहीं जा सकता । किन्तु वह विशेष कार्य तो बतलाओ ।

वसुसेन : हम शिल्पियों और श्रमिकों की प्रबल आकांक्षा है कि आप अब की बार का होलिकोत्सव हम लोगों के साथ मनायें ।

भोज : मेरा विश्वास है आपकी आकांक्षा पूर्ण होगी महाशिल्पी ! मैं यहाँ रहने की चेष्टा करूँगा । सुनो, आज तुम्हें एक रहस्य की बात बतलाऊँ। मेरे उपरान्त यदि किसी राज्य-कर्मचारी के द्वारा आपके कार्य में किसी प्रकार की बाधा आये तो भीमसेन से आकर कह देना । वह इस सागर के

निर्माण तक यहीं रहेगा। वह मेरा विश्वस्त व्यक्ति है। वैसे आप लोगों के मासिक पुरस्कार का प्रबन्ध भी इसी के हाथ में सौप जाऊँगा।

वसुसेन : अब मुझे जाने की आज्ञा मिले। मध्याह्न को आप मूर्तियों का निरीक्षण करने को तो आ ही रहे हैं। आप भी आइयेगा महारानी!

ज्योत्स्ना : अवश्य!

[वसुसेन जाते हैं]

भोज : (**कुछ स्मरण करके**) सुनो देवि! संदेशवाहक अभी-अभी क्षत्रप कमलेश्वर का पत्र लेकर आया है। राजकीय बातों के उपरान्त वह लिखते है—आचार्य हरिहरदास प्रसन्न व स्वस्थ हैं। पाठशाला का विशाल भवन बन गया है। चारों ओर चतुर मालियों के द्वारा विशाल उपवन लगाया जा रहा है। आचार्य और माता दोनों ने हमें आशीष भेजा है।

ज्योत्स्ना : बहुत ही अच्छे हैं मेरे पितामह! मैं तो इन्हें अपना पिता ही समझती थी। चौदह वर्ष की होने पर यह ज्ञात हुआ कि यह मेरे पितामह और माँ मेरी दादी हैं। मेरे माता-पिता नाव-दुर्घटना में डूब गये थे। तब मैं तीन-चार वर्ष की थी। एकान्त में कभी-कभी बाबा मेरे पिता की स्मृति में रोते भी हैं। (**गला भर आता है**)

भोज : अब की बार शीतल ऋतु के बीतने पर वन-विहार के लिए उधर ही चलेंगे।

ज्योत्स्ना : मेरे लिए सखि सुनन्दा का उसमें कोई सन्देश नहीं?

भोज : नहीं! हो सकता है क्षत्रप के पास उस समय अधिक

समय न हो । चलो तुम्हारे कारण सुनन्दा ने राजधानी के दर्शन तो कर लिये ।

ज्योत्स्ना : मैं उसे अपने पास बुला लूंगी । मेरा पूर्ण विश्वास है भास्कर, वह एक दूसरे की ओर आकर्षित है ।

भोज : पूछ लो !

ज्योत्स्ना : अपने हृदय की बात कौन किसी को बतलाता है ?

भोज : इष्ट मित्रों को सब बतला देते हैं । प्रिये ! क्या इस समय तुम से एक मधुर गीत की आकांक्षा करूं ।

ज्योत्स्ना : यही ! इसी समय !

भोज : यह भोज की नहीं, त्रिभुवन की आकांक्षा है।

ज्योत्स्ना : त्रिभुवन की आकांक्षा पर तो मैं अपने प्राणों की बलि भी दे सकती हूँ, किन्तु बिना वीणा के गीत क्या अच्छा लगेगा !

भोज : तुम्हारे स्वर में वीणा से भी अधिक मादकता है ।

ज्योत्स्ना : पर मैं भी तो अपने त्रिभुवन से वीणा सुनना चाहती हूँ ।

भोज : (**ऊँचे स्वर में**) कोई है !

प्रतिहारी : (**प्रवेश करके**) आज्ञा स्वामी !

भोज : अन्तःपुर से हमारी वीणा उठाकर लाओ ।

प्रतिहारी : जो आज्ञा महाराज ! (**जाता है**)

भोज : कल महाकवि की रचनायें सुनीं, कैसी लगीं ?

ज्योत्सना : बहुत ही उत्तम, कैसी मार्मिक उक्तियाँ थीं ! मैं तो आश्चर्यचकित हो रही था । वृद्ध होने पर भी उनके स्वर में कितना माधुर्य है !

भोज : वैसे अपने भास्कर की रचना में भी विचित्र माधुर्य है !

ज्योत्स्ना : तभी तो वह आपके अन्तरंग बन सके हैं । आज फिर चन्द्र-निशा के मध्य महाकवि धनपाल से कुछ रचनायें

सुनाने की प्रार्थना की जायेगी !

[तभी प्रतिहारी वीणा लेकर आता है। भोज वीणा को पकड़ लेते है, प्रतिहारी लौट जाता है। कुछ देर तक महाराज वीणा बजाते रहते है फिर देवी ज्योत्स्ना गीत गाती है]

गीत

बन प्रथम परिचय तुम्हारा वह मदिर मुस्कान।
कह गई मुझ से कि सखि अब गा प्रणय के गान॥

× ×

लाज ने मुझ से कहा सखि मौन रह मत बोल।
हृदय बोला लाज के इन बन्धनों को खोल॥
कर रही थी मैं तुम्हारे प्रणय का अनुमान।
थी प्रथम परिचय तुम्हारा वह मदिर मुस्कान॥

× ×

किन्तु अन्तर में उमड़ता था अनूठा राग।
हृदय ने मुझ से कहा—कहते इसे अनुराग॥
और उस क्षण सुन हठीली कोकिला की तान।
स्वयं ही गाने लगी प्रिय मैं प्रणय का गान॥

[गीत बन्द करती है]

भोज : बहुत ही सुन्दर !

धनपाल : (आते हुए) अत्युत्तम !

[ज्योत्स्ना लाज का अनुभव करती है]

भोज : (हँसते हुए) छिपकर सुन रहे थे महाकवि !

धनपाल : जैसे ही भीतर आने को हुआ तभी गीत की प्रथम पंक्ति

गूँज उठी, बस वहीं रुक गया। उस समय आना अशिष्टता होती। महादेवी के बहुत से गुणों से परिचय था ही। पर आज इस गुण से भी परिचित हुआ।

भोज : (**वीणा हटाते हुए**) पर महाकवि आपका वृद्ध-हृदय इस प्रणय-गीत से अब इस अवस्था में क्या रस पा सका होगा ?

धनपाल : (**हँसते हुए**) कवि वृद्ध हो गया है। किन्तु कवि-हृदय कभी भी वृद्ध नहीं हो सकता देव ! जीवन-भर हृदय ने रस का संग्रह किया हो वह हृदय वैसा रस-हीन नहीं हो सकता है।

भोज : महाकवि, देवि ज्योत्स्ना की इच्छा है कि आज निशा-मध्य, जब भगवान निशानाथ गगन-विहार कर रहे हों

ज्योत्स्ना : आज है भी चतुर्दशी ! चन्द्रदेव पूर्णता के सन्निकट होंगे !

भोज : चन्द्र पक्ष में यह पर्वत प्रदेश खिल उठता है।

ज्योत्स्ना : चन्द्रदेव ! अपनी सुधामयी किरणों से चारों ओर रजत ही रजत बिखेर देते हैं।

भोज : ऐसे मादक वातावरण में एक काव्य गोष्ठी का सयोजन करने की इच्छा है। आप अपनी रसमयी वाणी से आज फिर हमें आनन्द प्रदान करें।

धनपाल : निश्चित ! पर प्रथम आप वीणा को मधुर ध्वनि से उस वातावरण को मुखर बनायेंगे तब।

भोज : मुझे स्वीकार है।

धनपाल : वीणा के साथ स्वर और काव्य का सम्मिश्रण भी होगा।

भोज : सब कुछ स्वीकार है कवि ! काव्य में ही तो जीवन के अभावों की पूर्ति करता हूँ। काव्य-सम्बन्धी प्रत्येक बात

मुझे स्वीकार है ।

धनपाल : और महादेवी ! आप भी तो इस वातावरण को रस-प्रदान करेंगी ही ।

ज्योत्स्ना : नहीं महाकवि ! मैं सब के सम्मुख संकोच का अनुभव करती हूँ ।

भोज : (**हँसते हुए**) मैं भी भोज के रूप में नहीं, त्रिभुवन के रूप में ही इनका संगीत सुन सकता हूँ महाकवि !

धनपाल : अच्छा आप त्रिभुवन के रूप मे सुनियेगा । हम लोग इधर-उधर हट जायेंगे ।

भोज : (**हँसकर**) मुझे इस पर भी आपत्ति है महाकवि ! यदि देवी की मधुर स्वर-लहरी को सुनकर चन्द्रदेव ने इनका नाम पूछ लिया तो मैं विपत्ति मे पड जाऊँगा ।

[**तीनों हँसते है**]

भोज : बुद्धिसागर को कहाँ छोड आये है ?

धनपाल : वह प्रधान शिल्पी के साथ बातें करने लग गये थे । (**रुक कर**) सुना है कि महाराज मुझ पर रुष्ट है ।

भोज : नही तो, महाकवि ! प्रथम बात तो यह कि आप मेरी सभा के उज्ज्वल रत्न है । द्वितीय बात यह कि आप मेरे पिता और पितृव्य दोनो के अभिन्न सखा है । मैं तो आपका पितावत सम्मान करता हूँ । फिर आपने कोई ऐसा कार्य भी नही किया, जिससे रुष्ट होने का प्रश्न उठे ।

धनपाल : मैंने सुना था, जैनमत की ओर मेरे झुकाव से महाराज मुझ पर कुपित है ।

भोज : नही, ऐसी बात नही है धनपाल, किसी ने अपने हृदय के भाव मेरा नाम लेकर आप पर प्रगट किये होगे । मेरे राज्य मे ऐसा कोई बन्धन नही है । अपने हृदय की

भावना प्रगट करने का सबको अधिकार है। जो जिस मत को ग्रहण करना चाहे प्रसन्नता से ग्रहण करे। प्रत्येक मत मे अपनी-अपनी विशेषतायें है। मेरी सभी मतों में आस्था है। वैसे मै शैव हूं। देवाधिदेव का उपासक। हर एक मत की बात ध्यान से सुनता हूँ। ग्राह्य ग्रहण कर लेता हूँ, अग्राह्य छोड़ देता हूँ। विचारधाराओ की बहुलता से बौद्धिकता का विकास होता है। उसमे से व्यक्ति चुन ले कि उसका अपना मत क्या है ?

धनपाल : मै आपके हृदय को भली भाँति पहचानता हूँ देव ! किन्तु यह सुनकर कि आप मुझ पर रुष्ट है मुझे वास्तव मे आश्चर्य हुआ। और इसी उत्सुकतावश आज आप से मै यह प्रश्न कर बैठा।

भोज : निश्चिन्त रहें महाकवि ! ऐसी कोई बात होती तो मै स्वयं आपसे कह देता। राजधानी मे रहते हुए अनेक बार ऐसा व्यर्थ की बाते मेरे सम्मुख आती है। बिना बात वह हृदय को उद्विग्न करती है। अपने पद के विकास के लिए लोग बिना बात एक दूसरे की निन्दा करते है, विरोध करते हैं, पर मै प्रत्येक बात की परीक्षा लेने के पश्चात् ही अपना निर्णय देता हूँ। आप तो जानते ही है साधु कुलचन्द्र को सेनापति बनाने पर सभासदों द्वारा मेरी कितनी कटु आलोचना हुई थी। सभी चाहते है मै या मेरा सम्बन्धी उच्च पद पर आसीन हो। आत्मीयता को योग्यता की कसौटी मानते है। अपने सम्बन्धियो के लिए चिन्तित है। योग्य व्यक्ति की किसी को भी चिन्ता नही।

ज्योत्स्ना : सम्बन्धी या उनके पीछे जो हाथ जोड़े फिरते है वही

उनकी दृष्टि में योग्य है ।

धनपाल : मैं भी इन बातों पर बहुत अधिक सोचता हूँ । कभी-कभी इन विचित्र बातों पर हँसता भी हूँ । व्यक्ति के हाथ में सत्ता आने से उसके अवगुण भी गुण बन जाते हैं । कल तक जो लोग कुलचन्द्र का विरोध करते थे, उसके विरुद्ध आपको झूठी-सच्ची बातें बताते थे, जब उन्होंने देखा कि आप पर उन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, कुलचन्द्र यथास्थान है । तब वह विरोधी ही उनके प्रशंसक बन गये हैं ।

भोज : (हँसते है) मूर्ख है ! उन्हें यह ज्ञान नहीं कि मैं अनुभूति से काम लेता हूँ, श्रुति से नहीं । कुलचन्द्र और बुद्धिसागर जैसे योग्य व्यक्ति मेरे साथ न हों तो राज्य की नैया डगमगाने लगे ।

धनपाल : सौभाग्य की बात यह है देव ! कि इन दोनों के एक दूसरे के प्रति अच्छे विचार है । दोनों एक दूसरे का सम्मान करते है ।

भोज : दोनों योग्य है, विद्वान हैं । आप तो जानते ही है, अबकी बार वर्षाकाल में कुलचन्द्र ने अपनी योग्यता का अद्‌भुत परिचय दिया था ।

ज्योत्स्ना : वह क्या देव ?

भोज : युद्धकाल के अतिरिक्त सैनिक व्यर्थ पड़े रहते है, अकर्मण्यता का जीवन बिताते हैं । वह केवल युद्ध में जाकर खड्ग चला लेना ही देश-भक्ति समझते है । राष्ट्र के इतर निर्माण-कार्यो से उनका कोई सम्बन्ध नही, और कोटिशः मुद्रायें उनके वेतन पर व्यय होती हैं सो अलग । इसलिए युद्धकाल से अतिरिक्त समय में हम उन्हें अवकाश दे देते हैं । युद्ध के समय उन्हें फिर बुला लेते है, पर अभ्यास

का क्रम टूट जाने से वह योग्य सैनिक प्रमाणित नहीं होते।

ज्योत्स्ना : यह तो होगा ही। नियमित अभ्यास हर कार्य के लिए जीवनदायिनी शक्ति है।

भोज : यह सब सोच कुलचन्द्र ने सेना के लिए कुछ विशेष नियम बनाये हैं। एक विशेष संख्या तक सैनिक सदैव सेना में रहें। समय पर उन्हें वेतन मिलेगा। युद्धकाल के अतिरिक्त सैनिकों को देश के निर्माण-कार्यों में भाग लेना पड़ेगा इत्यादि बहुत से नियम ! सैन्य-शिक्षण के लिए प्रबन्ध किये गये हैं।

धनपाल : अब की बार वर्षाकाल में क्षिप्रा में जब बाढ़ आई थी तटवर्ती ग्रामीण प्रजा बहुत संकट में फँस गई तब उसने सैनिकों द्वारा उस संकट में दुखी प्रजा का उद्धार किया। सैनिक नावें क्षिप्रा के वक्ष पर दौड़ती फिरती थीं।

भोज : (हँसते हैं) अब आप लोग ही सोचें, यदि मैं दूसरों की बातों में आ जाता तो कुलचन्द्र जैसा योग्य व्यक्ति मेरे पास कैसे रहता। इसलिए मेरे जीवन का लक्ष्य रहा है सुनो सबकी, करो अपने मन की।

[तभी बुद्धिसागर आते हैं]

भोज : अब तक कहाँ थे महामात्य ?

बुद्धिसागर : मैं आपकी आज्ञा से प्रधान शिल्पी से आवश्यक सामग्री की सूची ले रहा था। आप यदि आज्ञा दें तो भोजपाल जाकर वहाँ के किसी श्रेष्ठि को यह कार्य-भार सौंप दूं।

भोज : तुम भी विचित्र व्यक्ति हो महामात्य ! वहाँ जाने की क्या आवश्यकता है ? किसी को भेजकर वहाँ से एक-दो

श्रेष्ठियों को यहीं बुला लो। आज निशा-मध्य हम संगीत और काव्य-गोष्ठी का कार्यक्रम बना रहे हैं। (हँसकर) तुम्हारे जैसे श्रोता के अभाव में वह गोष्ठी सूनी-सूनी सी लगेगी।

ज्योत्स्ना : क्योंकि उस गोष्ठी में दो कवि और दो श्रोता चार ही तो व्यक्ति होंगे।

भोज : (हँसकर) और उन दो श्रोताओं में से भी यदि एक चला जाय तब कवि की रचना पर प्रशंसा के पुष्प कौन बिखेरेगा?

ज्योत्स्ना : (हँसकर) और मैं अकेली कब तक—अति सुन्दर, अति उत्तम कहती रहूँगी।

धनपाल : और यदि अति सुन्दर, अति उत्तम, धन्य हो, धन्य हो, कवि! यह शब्द गोष्ठी के वातावरण में न गूँजे तो कलाकार उत्साहहीन हो जाता है।

बुद्धिसागर : (हँसकर) नहीं, मैं आप लोगों को उत्साहहीन नहीं करूंगा। मैं अवश्य उस गोष्ठी में रहकर आप लोगों का उत्साह बढ़ाऊंगा। (गम्भीर होकर) राजाधिराज! मुझे आप इस महामात्य के पद से अवकाश ही दें तो उचित रहे।

भोज : (विस्मय से) वह क्यों महामात्य?

बुद्धिसागर : मेरे हृदय का तो सारा रस ही इस शुष्क कार्य ने चूस लिया है। कभी किसी प्रदेश का क्षत्रप आकर अपना रोना रोता है, कभी किसी विषय का विषयपति पधार जाता है। दण्डपाशिक, कोटपाल सब आकर अपना-अपना रोना रोते हैं। कभी-कभी तो मैं ऊब-सा जाता हूँ। ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं कला और साहित्य से दूर होता

जा रहा हूँ।

भोज : इन्हीं ग्रन्थियों को सुलझाने के लिए तो तुम्हें महामात्य बनाया है।

धनपाल : (हँसकर) और तुम्हारी इन्हीं योग्यताओं को देखकर महाराज ने तुम्हें बुद्धिसागर की उपाधि प्रदान की है।

ज्योत्स्ना : तो इस नाम का श्रेय इनके माता-पिता या इनके कुल-पुरोहित को नहीं है।

भोज : नहीं देवि ! एक बार हमने भावावेश में आकर अपना समस्त राज्य एक कवि को दान कर दिया था। किन्तु महामात्य ने अपनी बुद्धि से एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राओं में क्रय कर लिया।

ज्योत्स्ना : पर ऐसी घटना घटी कैसे !

बुद्धिसागर : उसका कारण भी मैं ही था देवि ! एक बार एक निर्धन ब्राह्मण को देखकर मेरे हृदय में करुणा उत्पन्न हुई। वह कवि था। मैंने यह विचारा कि महाराज कवियों, विद्वानों को पर्याप्त पुरस्कार देते ही हैं इसे भी कुछ मिल जायेगा। उससे कहा, परिश्रम और साधना से आठ-दस उत्तम पद लिखकर मेरे पास लाओ, मैं तुम्हें महाराज तक पहुँचा दूँगा। समय आने पर मैंने उसे राज-सभा में पहुँचा दिया। किन्तु मैं स्वयं सरिता-तट की ओर चला गया।

भोज : मैंने कुछ सुनाने को कहा ! उसने एक पद सुनाया। उत्तम ! मेरा हृदय खिल उठा। मैंने पूर्व दिशा की ओर से अपना मुख दक्षिण की ओर कर लिया।

ज्योत्स्ना : वह क्यों देव ?

भोज : यही तो इसमें रहस्य है। सुनती चलो। मैंने और कुछ सुनाने के लिए उससे कहा—द्वितीय पद पहले से भी

उत्तम था। फिर मैं पश्चिम की ओर मुख करके बैठ गया। तृतीय पद उन दोनों से बढ़कर था। मैंने उसके पश्चात् अपना मुख उत्तर दिशा की ओर कर लिया। सुनाने की आज्ञा दी। चतुर्थ पद पर तो मैं रीझ ही गया। तत्पश्चात् पूर्व की ओर मुख करके मैं खड़ा हो गया। और अब उस अन्तिम पद सुनाने को कहा—वह उच्चतम था। मैं राजसिंहासन छोड़ राज-सभा के बाहर चला आया। सभा विसर्जित हो गई।

धनपाल : वह कवि हतबुद्धि-सा सबको कुवचन कहता हुआ सरिता-तट की ओर चल दिया।

बुद्धिसागर : मैं उसकी प्रतीक्षा वहाँ कर ही रहा था। मुझे देखते ही वह झल्ला उठा। महाराज को अरसिक इत्यादि बतलाने लगा। सारी घटना मुझे सुनाकर बोला—मुख से रचना की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कहा, बस नट-कौतुक ही दिखलाते रहे।

ज्योत्स्ना : वास्तव में वह था ही नट-कौतुक !

बुद्धिसागर : सुनकर मैं घबराया, हृदय में महाराज की दानशीलता की प्रशंसा भी कर रहा था, और क्षुब्ध भी था कि किस मर्कट को अदरक की गाँठ दे गये हैं। मैंने उससे कहा, तुम्हें जो कुछ महाराज ने दान में दिया है वह सब मुझे एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रा में क्रय करते हो। वह विस्मित होकर बोला—पर मुझे तो उन्होंने कुछ दिया ही नहीं।

ज्योत्स्ना : वास्तव में मैं भी यही सोच रही हूँ कि उसे दिया ही क्या ?

बुद्धिसागर : इस पर मैंने कहा—तुम्हें एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राये जो मिल रही हैं ! तुम एक पत्र पर मुझे यह लिख दो कि मुझे

जो कुछ दान में मिला वह सब मैं एक लक्ष स्वर्ण-मुद्राओं में क्रय करता हूँ। (हँसता है) उस समय वास्तव में वह मुझे मूर्ख समझ रहा होगा।

ज्योत्स्ना : वह क्यों ?

बुद्धिसागर : इसलिए कि उसकी समझ के अनुसार राजा ने तो उसे कुछ नही दिया और मन्त्री उस कुछ नही के परिवर्तन में एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रायें दे रहा है। मैंने कहा—शीघ्र उत्तर दो, नही तो मैं जा रहा हूँ। उसने कुछ सोच-विचार के उपरान्त मेरी बात स्वीकार कर ली। मैंने उसे एक श्रेष्ठि के पास से एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रायें लेकर दे दी, और महाराज के पास पहुँचा। यह तब देश छोड़ने के लिए अपने अश्व पर चढ़ रहे थे। मैंने इन्हें सारी कहानी सुनाकर बाहर जाने से रोक लिया।

भोज : तब इन्होंने अपनी बुद्धि से मेरे धर्म और देश दोनों की रक्षा की। इस पर प्रसन्न होकर मैंने इन्हे बुद्धिसागर की उपाधि प्रदान की।

ज्योत्स्ना : देश और धर्म पर कौन सा संकट आ गया था ?

धनपाल : (हँसकर) महादेवी इस गाथा का सार अभी तक नहीं समझी ? राजाधिराज ने उसे अपना सारा राज्य दान में दे दिया था। चार पदों पर चारों दिशाओं का राज्य और पाँचवें पद पर सिंहासन।

ज्योत्स्ना : वास्तव मे तब तो महामात्य ने देश की रक्षा की ! पर महामात्य आपने वह धन श्रेष्ठि से लेकर क्यो दिया ? राज्य-कोष से क्यों नही दिया ?

बुद्धिसागर : राज्य-कोष से धन देना अधर्म होता देवि ! उस समय राज्य-कोष का स्वामी तो वह कवि ही था। उसी के धन

मे उसकी वस्तु मैं मोल नही ले सकता था। (हँसते है) और दूसरे दिन श्रेष्ठि को उसका धन मैंने मय व्याज के लौटा दिया।

[प्रहरी का प्रवेश]

प्रहरी : महारानी ! पाकशाला से पूछा गया है—भोजन किस समय किया जायेगा।

भोज : (हँसकर) अभी, चलो, यह शुभ कार्य भी कर ही लिया जाये।

[सब उठते है]

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान—धार नगरी। महाराज भोज की निजी नाट्य-शाला का रंगमंच। महाराज आजकल राजधानी धार में आये हुए हैं। इन दिनों राजधानी में कला और साहित्य की चर्चा जोरों पर है। महाकवि धनपाल और कवि भास्कर भवभूति के उत्तर-रामचरित्र नाटक खेलने का आयोजन कर रहे हैं। उसी विषय में वह रंगमंच का निरीक्षण करने में लगे हुए ह।]

भास्कर : गुरुदेव ! आपकी आज्ञा से मैं अभिनय करने के लिए प्रस्तुत हो तो गया हूँ, किन्तु सोचता हूँ, क्या मैं राम का अभिनय कर भी सकूँगा।

धनपाल : अवश्य ! इसीलिए तो मैंने तुम्हें चुना है। सुशिक्षित व्यक्तियों में अभिनय के लिए अभिरुचि उत्पन्न होनी ही चाहिए। नहीं तो नाट्यकला कैसे श्रेष्ठ विकास नहीं हो सकेगा वत्स ! अभिनय-कला को उच्चवर्ग के लोग हेय समझते हैं। यह बात नाटक की गति को अवरुद्ध करती है। हमें जीवन में जहाँ सामाजिक और दूसरी बातों में बहुत से सुधार करने हैं वहाँ कला के प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है और यदि अभिनय सफल रहा तो महाकवि भवभूति की यह कृति करुण रस का नद प्रवाहित कर देगी।

भास्कर : मैं आपसे सहमत हूँ गुरुदेव ! **(हँसता है)** अभी तक दूसरों से अभिनय करवाता था अब की बार स्वयं अभिनय करूंगा ।

धनपाल : धीरता, वीरता, गम्भीरता और भावुकता सब कुछ तुम्हारे जीवन में है बस उसे राम के रूप में जनता के सम्मुख उँड़ेल देना है । अभिनय की चरम सीमा वही है जहाँ अभिनेता स्वयं को भूलकर चरित्र नायक के रूप में तल्लीन हो जाता है । जब तुम यह अनुभव करोगे कि मैं भास्कर नहीं हूँ राम ही हूँ तभी अभिनय सफल और प्रभावशाली होगा ।

भास्कर : चेष्टा तो ऐसी ही है । सीता के अभिनय में विजया भी बहुत जँचेगी ।

धनपाल : वह तो है ही, अभिनेताओं का चुनाव मैंने बहुत सोच-समझकर किया है । इस पर नाटक की आधी सफलता निश्चित होती है । पात्र को चुनते समय नायक-नायिका या जिस चरित्र का भी अभिनेता अभिनय कर रहा है । दोनों के रूप-रंग वयस की समता परम आवश्यक है । इस नाटक में तुम्हारे और विजया के अभिनय करने से उच्चवर्ग के कुमार-कुमारियों में भी रुचि उत्पन्न होगी ।

भास्कर : यह तो निश्चित है । **(एक ओर देखकर)** सम्भवतः आप से मिलने राजमाता कुसुमवती आ रही हैं । मुझे आज्ञा हो तो मैं चलूँ ।

धनपाल : हाँ, तुम चलकर दूसरे अभिनेताओं के हाव-भाव ठीक करवाओ ।

भास्कर : जो आज्ञा ! **(जाने लगता है)**

धनपाल : अपना-अपना पाठ रट तो सबने लिया है न ?

भास्कर : (**दूर कोने ही से**) जी हाँ, पर्याप्त मात्रा में नाटक हमें स्मरण हो गया है। (**जाता है**)

धनपाल : (**अपने आप**) राजमाता स्वयं चलकर मुझसे मिलने आई है। अवश्य ही यह किसी नूतन घटना की सूचना है। नहीं तो यह अपने कक्ष से बहुत ही कम बाहर आती है। चलूँ आगे बढ़कर स्वागत करूं। (**मंच के दूसरे द्वार की ओर आगे बढ़कर**) प्रणाम राजमाता !

कुसुमवती : (**नेपथ्य से ही**) जयशिव महाकवि धनपाल !

[**दोनों मंच के मध्य बात करते हुए आते है**]

धनपाल : आज बहुत दिनों पश्चात् राजमाता के दर्शन हुए।

कुसुमवती : (**फीकी हँसी**) ऐसा ही है। अपने ही विचारों में खोई रहती हूँ। (**बात बदलकर**) और सुनाओ आज-कल आप क्या लिख रहे है ? किस ग्रन्थ की रचना हो रही है ?

धनपाल : इन दिनों किसी बड़े ग्रन्थ की रचना तो नहीं कर रहा हूँ। यूँ ही यदाकदा कुछ पँक्तियां लिख लेता हूं।

कुसुमवती : ठीक भी है, अच्छा कर रहे हो कविश्रेष्ठ, जो आप कुछ नहीं लिख रहे है। आज-कल वैसे भी राजधानी में कवियों की बाढ़-सी आ गई है। वीरों की नगरी विलासियों की नगरी दीखने लगी है। चारों ओर राग-रंग और नृत्य-गान के अतिरिक्त और कोई कार्य ही नहीं रह गया है।

धनपाल : यह तो मानना ही पड़ेगा कि महादेवी कि कला और साहित्य का विकास किसी भी नरेश के समय में इतना नहीं हुआ जितना कि भोजदेव के समय में ! और प्रजा की देख-भाल भी किसी राजा ने इतनी लगन से नहीं की होगी।

कुसुमवती : ठीक है, मानती हूँ धनपाल ! किन्तु जो कला जीवन पर

सीधा प्रभाव नही डालती उससे क्या लाभ ? आज की कला से विलास को ही बल मिल रहा है, विकास को नही ।

धनपाल : **(आश्चर्य से)** महादेवी ! यह आप क्या कह रही है ?

कुसुमवती : **(भावावेश में)** भोज स्वयं कवि है । आप लोगों ने उसे कविराज की उपाधि दी है । उसकी राजसभा विद्वानों और कलाकारों से भरी पड़ी है, प्रसन्नता की बात है ! पर कविश्रेष्ठ ! एक राजा का उत्तरदायित्व इतने से ही समाप्त नहीं हो जाता । उसे राज्य की अन्य बातों को भी नही भूलना चाहिए । राजा का वीर और योद्धा होना उसके राज्य और प्रजा दोनों के लिए हितकर है । परम आवश्यक है ।

धनपाल : आज आप कैसी बाते कर रही है राजमाता ? परम भट्टारक भोजदेव की वीरता में भी क्या किसी को सन्देह हो सकता है ! अभी कुछ ही वर्ष पूर्व उन्होंने शाकम्भरी-नरेश वीर्यराम चौहान को मारकर अपनी सीमावाभिनी प्रजा की रक्षा की थी, और सभी लोगों ने उनकी वीरता की प्रशसा की ! प्रशसकों मे आप भी एक थी । सिहासन पर बैठते ही पचनद-नरेश अनगपाल की सहायता पर जाकर सुल्तान महमूद से लोहा लिया । मेरे विचार मे तो वीरता और कविता उन्हें ईश्वर की ओर से मिले हुए दो वरदान हैं, शक्ति और सरस्वती दोनों की उन पर अनन्त कृपा है !

कुसुमवती : **(व्यंग्य से)** पर दीखता है, आजकल आपके सम्राट् की वीरता सो-सी गई है । कारण कि उनकी सभा में चापलूस लोगों की संख्या अधिक हो गई है । कवियों के पास नारी-सौन्दर्य वर्णन करने के अतिरिक्त और कोई

विषय काव्य के लिए रहा ही नहीं। अब वीरता के गीत गाने वाले कवि वहाँ नहीं है। वह कवि भी मेरे पति महाबली मुञ्ज और देवर सिन्धुराज के साथ समाप्त हो गये हैं।

धनपाल : ओह ! तो महादेवी मुझ पर ही अपने शब्दों के प्रखर तीर चला रही है। क्यों यह ठीक है न महादेवी ?

कुसुमवती : यही समझ लो !

धनपाल : सम्भवतः महादेवी यह भूल गई है कि मैं उनके पति स्वर्गीय महाराज पृथ्वीवल्लभ मुञ्ज का सेनापति रहा हूँ। उनके साथ मैंने बहुत-सी युद्ध-यात्रायें की हैं। उनकी वीरता पर लिखी हुई मेरी कविताएँ आज भी मालव-जनता गाती है।

कुसुमवती : मैं इस बात से नाही कब करती हूँ, मुझे भी उनमें से कई एक स्मरण हैं, पर व्यक्ति अपनी पुरानी पूँजी पर कब तक जी सकता है ? **(उदासी से)** मुझे आप से यह आशा नहीं थी कविवर ?

धनपाल : किस बात की आशा महादेवी ?

कुसुमवती : यही कि आप अपने स्वामी की मृत्यु का प्रतिशोध भी कोंकणवालों से नहीं ले सकोगे। मुञ्ज के उत्तराधिकारी इतने निकम्मे निकलेंगे, मुझे इस बात का विश्वास नहीं था कवि ! और हो सकता है वह भी इसी विश्वास को लेकर मरे हों कि मेरे आने वाली पीढ़ियाँ कोंकण से अवश्य ही मेरी मृत्यु का प्रतिशोध लेंगी। आप चाहते तो वह सब कुछ हो सकता था। पर आपको क्या ? एक स्वामी गया, दूसरा मिल गया।

धनपाल : **(अधीर होकर)** राजमाता ! महादेवी !

कुसुमवती : यह मत भूलो कवि कि वह मुञ्ज की नहीं पूरे मालव राष्ट्र की मृत्यु थी, पूरे देश का अपमान हुआ था।

धनपाल : जानता हूँ महादेवी ! समझता हूँ। मुझे क्षमा करो देवी ! बूढ़ा हूँ तो क्या हुआ ! बाँहों में चाहे बल न रहा हो। पर वाणी मे बड़ी शक्ति है। मेरी लेखनी मेरे पास है। शीघ्र ही कुछ न कुछ करके दिखलाऊँगा। आपने मेरी आँखें खोल दी है। (**सोचते हुए**) शीघ्र ही एक नाटक खेलूँगा और मुझे पूरा विश्वास है, उसके साथ ही सम्राट का हृदय बदल जाएगा।

कुसुमवती : देवाधिदेव की कृपा से अवश्य सफलता मिलेगी।

धनपाल : अच्छा राजमाता, मै चलूँ। मै महाराज मुञ्ज पर एक नाटक लिखूँगा। मैं दिन-रात एक कर दूँगा। उत्तर रामचरित्र की जगह वही नाटक यहां खेला जायगा। भास्कर को ढूँढ़ूँ जाकर।

कुसुमवती : जाओ महाकवि, मुझे और स्वर्गीय मुञ्ज की आत्मा को अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाओ।

[धनपाल उस ओर जाते हैं जिधर भास्कर गये हैं और दूसरी ओर से राजमाता भी। कुछ क्षण उपरान्त राजा भोज और ज्योत्स्ना बातें करते हुए मंच पर आते है।]

भोज : यहाँ कोई भी नहीं।

ज्योत्स्ना : कंचकी ने तो कहा था कि महाकवि वहीं है, मंच का निरीक्षण कर रहे है।

भोज : तब फिर यहाँ कही निकट ही होंगे, अभी आ जायेंगे। राजमाता से मिली थीं आज ?

ज्योत्स्ना : तब मैं आपके पास, उनके यहाँ से होकर ही आई थी। न जाने आजकल वह किन विचारों में खोई रहती है।

भोज : मेरी समझ में भी नहीं आ रहा। बहुत अधिक जानने की चेष्टा की है। उन्हें क्या व्यथा है कुछ समझ में ही नहीं आता। हाँ या ना के अतिरिक्त और कुछ उत्तर ही नहीं देती।

ज्योत्स्ना : वास्तव में आपकी दूरी को वह सहन नहीं कर सकती।

भोज : किन्तु अब तो मैं दो मास से धार में ही हूं। बहुत देर तक उनके पास बैठा उनके हृदय की थाह तक पहुँचने की चेष्टा करता रहता पर कुछ सफलता नहीं मिलती। वैसे उनको यह उदासी नई नहीं है। वर्षों से चली आ रही है। जब से महाराज मुञ्ज की मृत्यु हुई है तब से! आज उस बात को सोलह-सत्रह वर्ष हो गये हैं।

ज्योत्स्ना : कोंकण-नरेश तैलप से उनकी मृत्यु का प्रतिशोध क्यों नहीं लिया गया?

भोज : अब यह बात बहुत पुरानी हो चुकी है। पृथ्वीवल्लभ मुञ्ज के पश्चात् मेरे पिता सिन्धुराज यहाँ के सम्राट् बने थे। वैसे मुञ्ज का उत्तराधिकारी मैं ही था। मुझे उन्होंने गोद लिया था। पर मैं तब बहुत ही छोटा था। इसी-लिए सिन्धुराज गद्दी पर बैठे।

ज्योत्स्ना : उन्होंने तैलप पर आक्रमण क्यों नहीं किया?

भोज : उन्हें दूसरे ही युद्धों से अवकाश नहीं मिला। युद्ध में ही उनकी मृत्यु हुई, उनके पश्चात् मैं गद्दी पर बैठा। उधर तैलप भी मर चुका था। प्रतिशोध लिया जाय तो किससे? वैसे भी मैं युद्ध का पक्षपाती नहीं हूँ। देश का निर्माण-कार्य रुक जाता है। आवश्यक ही हो तो युद्ध किया जाये।

अभी दो-तीन वर्ष पूर्व ही कुलचन्द्र ने गुजरात पर, वहाँ के महामात्य की किसी बात से रुष्ट होकर, आक्रमण कर दिया। गुजरात-नरेश सिन्धुवालों से युद्ध करने गये हुए थे। वहाँ के महामात्य ने बहुत-सा धन देकर इससे सन्धि कर ली। सिन्धु से लौटने पर गुजरात नरेश ने क्षोभ प्रकट किया। मैंने शान्तिपूर्वक उनकी बातें मानकर उनके दूत को अपनी राज-सभा में स्थान दिया। मेरी इच्छा है कि पड़ोसी राज्यों से अपने सम्बन्ध अच्छे ही रहें। तब आक्रमण किया जाये जब सम्मान-रक्षा का कोई और उपाय न रहे।

ज्योत्स्ना : मेरे सामने ही तो यह घटना घटी थी। हो सकता है देव! राजमाता को इसी बात का दुख हो कि महाराज मुञ्ज की मृत्यु का प्रतिशोध क्यों नहीं लिया गया?

भोज : विचार तो मेरा भी कुछ-कुछ यही है। पर युद्ध के प्रति न जाने क्यों मेरे हृदय में उत्साह नहीं? फिर भी मैं उनसे इस विषय पर बात करूँगा, मैं उनके स्नेह-प्यार की छाया में पला हूँ।

ज्योत्स्ना : उनकी आकांक्षा को पूर्ण करना आपका कर्तव्य है देव!

[तभी बुद्धिसागर आते हैं]

बुद्धिसागर : महाराज की जय हो!

भोज : क्यों क्या बात है महामात्य?

बुद्धिसागर : देव! कोंकण की सीमा से कुछ प्रजाजन आये हैं। उनका आग्रह है कि हम महाराज से अवश्य मिलेंगे। भूखे-प्यासे दुखी जन आपके दर्शनों के लिए लालायित हैं।

भोज : कहाँ हैं वह लोग?

बुद्धिसागर : राजप्रासाद के बाहर बैठे हैं। उनके महत्तर मेरे साथ हैं

आज्ञा हो तो बुलाऊँ ।

भोज : कोई बात नही, यही बुला लो । **(बुद्धिसागर जाते हैं)** देखा ज्योत्स्ना! महाराज शब्द सुनने मे सुन्दर और सुखकर है । किन्तु यह कितना बोझिल शब्द है इसका अनुमान लगाना कठिन है ।

[तभी बुद्धिसागर महत्तर को लेकर आते हैं]

महत्तर : राजाधिराज की जय हो !

भोज : जय शिव ! कहो कैसे आना हुआ ?

महत्तर : देवाधिदेव ! हम लुट गये हैं । हमारे गाव उजाड़ दिये गये हैं ।

भोज : पहले संक्षेप मे बात बताओ, तत्पश्चात् पूर्ण विवरण देना ।

महत्तर : संक्षेप मे यह है महाराज कि कोंकण के दस्युओं ने गोदावरी पार करके हमारे ग्रामों पर आक्रमण किया । प्रत्युत्तर मे हमने वीरतापूर्वक उनका सामना किया, खदेड़ते हुए गोदावरी तक ले गये । वह नावों पर चढकर भागे, हमने नावों द्वारा ही पीछा किया । तभी हम पर कोंकण प्रदेश के सैनिकों ने आक्रमण कर दिया ।

भोज : क्या यह निश्चित है, वे कोंकण के सैनिक थे । हो सकता है वह भी दस्यु-दल के ही व्यक्ति हों ।

महत्तर : नही देव ! मैंने दीपयष्टियों **(मशालों)** के प्रकाश मे स्वयं उन्हें देखा । हमारे बहुत से लोग मारे गये, घायल हुए और कुछ को वह लोग बन्दी बनाकर ले गये हैं ।

भोज : आप लोगों ने अपने यहाँ के भुक्तिपति से बात की ।

महत्तर : जी हाँ ! कई बार उनसे मिले, किन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर नही मिला ।

भोज : कारण ज्ञात है ?

महत्तर : निश्चित तो नही जानता, पर वहाँ के लोगों से यह चर्चा अवश्य सुनी है, कि कोंकण के किसी सामन्त की पुत्री उनकी पत्नी है। इसीलिए वह टालमटोल कर रहे हैं।

भोज : विचित्र बात है !

महत्तर : हम वहाँ सुरक्षित नही है। हमें अपने नहीं, अपने बाल-बच्चों के जीवन की चिन्ता है। जनता ग्रामों को छोड़कर आसपास के नगरों में जा रही है। आप कृपा करके एक बार मेरे साथ आये हुए दीन-दुखियों को ही अपने दर्शन तो दीजिये। उन्हें सान्त्वना दे दीजिये।

भोज : महामात्य ! कोंकण-नरेश जयसिंह को हमारी ओर से कड़ा विरोध-पत्र भेजो। उन्हें लिखो, बन्दियों को शीघ्र मुक्त करे और क्षतिपूर्ति करे। (ज्योत्स्ना से) रानी ! तुम अपने प्रासाद को लौट जाओ। सुनो महामात्य ! तुम इन लोगों के लिए भोजन का प्रबन्ध कराओ। चलो महत्तर, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।

महत्तर : बड़ी कृपा की महाराज !

भोज : कृपा नहीं, यह तो मेरा कर्तव्य है।

[सब जाते हैं। पर्दा गिरता है]

दूसरा दृश्य

[स्थान—वही। नाट्यशाला पर पर्दा पड़ा हुआ है। किसी नाटक को खेलने की तैयारी है। महाराज भोज, ज्योत्स्ना, बुद्धि-सागर, राजमाता, कुलचन्द्र सभी जनता में बैठे नाटक को देख रहे हैं। पर्दे के आगे मंच पर महाकवि धनपाल खड़े है, और दर्शकों को नाटक के विषय में कुछ बतला रहे है]

धनपाल : कृपया अब आप सब शान्त हो जाइये। अब इस नाटक का अन्तिम दृश्य आपके सम्मुख आ रहा है। यह पृथ्वी-वल्लभ मुञ्ज के जीवन की अन्तिम झाँकी है। इस दृश्य में पृथ्वीवल्लभ बन्दी के रूप में तैलप की सभा में उपस्थित होते हैं।

[इतना कहकर धनपाल जनता में आकर अपनी जगह पर बैठ जाते हैं, तभी पर्दा उठता है। तैलप राज-सिंहासन पर बैठा है। एक-दो सामन्त अपनी-अपनी जगह पर बैठे हैं। उससे कुछ हटकर एक आसन पर उसकी बहन मृणालवती बैठी है। सामने बन्दी के रूप में शृंखलाओं से जकड़े हुए मुञ्ज खड़े हैं।]

तैलप : (**अट्टहास**) क्यों भागने की चेष्टा कर रहे थे न, किन्तु दुर्भाग्य से तुम्हारा षड्यन्त्र सफल नहीं हो सका। और भी दृढ़ शृंखलाओं से जकड़े गये।

मुञ्ज : (**दर्प से**) क्या कहा तैलप, मैं भागने की चेष्टा कर रहा था। मैं पृथ्वीवल्लभ मुञ्ज। मैं भागना चाहता तो मुझे रोक ही कौन सकता था मूर्ख !

तैलप : (**क्रोध से**) मुञ्ज ! राजसभा में बोलने का ढंग सीखो। तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि तुम प्रतापी तैलप से बातें कर रहे हो।

मुञ्ज : (**हँसी**) प्रतापी तैलप ! (**अट्टहास**) छः बार जो मेरे चरण धो चुका है, वही हो न तुम प्रतापी तैलप ! (**व्यंग्य से**) सम्भवतः अपने जीवन में प्रथम बार तुमने मूर्ख शब्द का बुरा माना। इससे पहले भी अनेक बार मैं तुम्हारे लिए इस शब्द का प्रयोग कर चुका हूँ। तब तो

तुम इसे आशीष रूप में ग्रहण करते थे। क्यों, क्योंकि प्राणों का मोह यह सब सुनने पर बाध्य करता था।

मृणाल : (**क्रोध से**) मुञ्ज ! राज्यसभा के नियमों को ध्यान मे रक्खो।

मुञ्ज : (**व्यंग्य से**) आप भी बोलीं, छल और प्रवंचना की प्रतिमूर्ति ! (**कुछ रुककर**) मृणाल ! तुम्हारे मुख पर क्रोध शोभा नही देता। तुम्हारे मुख से मुञ्ज शब्द भी नही जँचता। तुम तो पृथ्वीवल्लभ ही कहो। तुम्हे तो पृथ्वीवल्लभ कहने का अभ्यास हो गया है।

तैलप : बन्द करो यह अपनी बकवास ! प्राणों की रक्षा चाहते हो तो शीघ्र मेरे चरणों को धोवो '

मुञ्ज : (**हाथों को देखते हुए**) यह हाथ केवल देवाधिदेव महादेव के चरण धोने के लिए बने हैं मूर्ख ! (**हँसते है**) बुरा मत मानना तैलप ! तुम्हारे लिए मूर्ख शब्द कहने का मुझे अभ्यास हो गया है। और अब यह अभ्यास जन्म-जन्मान्तर तक नही छूट सकता।

तैलप : मै फिर कहता हूं, यदि तुम प्राणों की रक्षा चाहते हो मुञ्ज तो हम से क्षमा माँग लो। सबके सम्मुख हमारे चरण धोवो। हम तुम्हे क्षमा कर देंगे।

मुञ्ज : सिंह पिंजरे से बन्दी रहकर भी सिंह ही होता है मूर्ख ! तू सम्भवतः इतना भी नही जानता कि सिंह भूखा मर जायेगा किन्तु घास नहीं खायगा। शृगालों की सभा सिंह को भयभीत करना चाहती है। किन्तु तुम्हारा प्रयत्न असफल रहेगा !

तैलप : मरने से पहले एक बार फिर सोच लो। जीवन इस तरह नष्ट करने की वस्तु नही।

मुञ्ज : जीवन का मोह कायरों को होता है वीरों को नहीं। मैं नही रहूँगा तो क्या होगा? मुझे पूर्ण विश्वास है, मेरे पश्चात् सिन्धुराज और भोज तुझ से और कोंकण से मेरी मृत्यु का प्रतिशोध लेंगे। एक बार फिर मालव सैनिकों के अश्वों की टापो से तेरी राजधानी की प्राचीरें हिल उठेंगी। सिहों की सन्तान भी सिह ही होती है।

तैलप : बन्द करो अपनी बकवास! बधिको, ले जाओ इसे हमारे सामने से! और शीघ्र ही इसका सिर काटकर हमारे सामने लाओ।

मुञ्ज : चलो बधिको, शीघ्र ही अपने स्वामी की इच्छा पूरी करो।

[**बधिक आगे बढ़ता है**]

तैलप : ठहरो, इस तरह इसका मान भग नही होगा। इसे मस्त हाथी के पाँव से कुचलवादो। जनता के सामने ही यह सब-कुछ होगा। शीघ्र ही इसका प्रबन्ध करो।

भोज : (**आवेश मे अपनी तलवार खींचकर मंच पर आ जाते है**) तैलप! बचाओ अपने को, कापुरुष निकाल अपनी खड्ग!

तैलप : (**हाथ जोड़कर**) दास को क्षमा मिले स्वामी! मैं तो एक अभिनेता हूं।

भोज : इस नाटक को यही समाप्त कर दो। हुँ, महाकवि धनपाल! क्या यह दृश्य इतना ही भयकर था!

धनपाल : (**मंच पर आते हुए**) इससे भी कहीं बढ़कर सम्राट!

[**अभिनेता नेपथ्य में चले जाते है**]

भोज : सेनापति कुलचन्द्र!

[**कुलचन्द्र मंच पर आते है**]

कुलचन्द्र : आज्ञा सम्राट !

भोज : सेनाओं को युद्ध के लिए कटिबद्ध होने का आदेश दो। हम कल प्रातःकाल ही यहाँ से प्रस्थान करना चाहते हैं। कोंकणवालों को बतला देना चाहते हैं कि पृथ्वीवल्लभ मुञ्ज के वंशज कायर नहीं। कोंकण की राजधानी की ईंट से ईंट न बजा दी तो मेरा नाम भी भोज नहीं।

कुसुमवती : (**मंच पर आकर**) पर भोजदेव ! तैलप को तो मृत्यु हो चुकी है। वहाँ पर अब जयसिंह का राज है।

भोज : किसी का राज भी हो माता इससे मुझे क्या लेना ? मैं कोंकण के इतिहास को बदलना चाहता हूँ। मालवों की पराजय को जय के रूप में लिखवाना चाहता हूँ। वहाँ की राजधानी के वे नागरिक तो जीवित होंगे जिन्होंने अपनी आँखों से पृथ्वीवल्लभ की मृत्यु देखी होगी। सोचते होंगे, मालवगण कितने कायर हैं कि अपने महाराज की मृत्यु का प्रतिशोध तक नहीं ले सके। अब वह देखेंगे कि मुञ्ज की मृत्यु का प्रतिशोध किस प्रकार लिया जाता है ?

[तभी सभा में महाराज भोज की जय के नारे लगते हैं। कवि धनपाल की जय ! [बुद्धिसागर भी मंच पर आते हैं।]

भोज : कविवर ! आज आपने मेरी आँखें खोल दीं, (**गले से उतारकर रत्नों की माला देते**) यह है आपका पुरस्कार ! मेरा विचार है कि आपने यह नाटक इसी उद्देश्य को दृष्टि में रख अभिनीत किया है। बुद्धिसागर ! इसी समय परिषद बुलाओ। आवश्यक बातें करनी हैं।

बुद्धिसागर : जो आज्ञा !

कुसुमवती : मैं भी तुम्हारे साथ युद्ध में चलूँगी पुत्र ! मैं अपनी आँखों से कोंकण का पतन देखना चाहती हूँ।

भोज : राजमाता की सभी इच्छाओं को पूर्ण किया जायगा। माँ का आशीर्वाद हर समय मेरे साथ रहे इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात और हो ही क्या सकती है ? वेश बदलेंगी या इस नारी-वेश में ही रहेंगी।

कुसुमवती : (हँसती है) जब सम्राट दिन में न जाने कितने वेश बदलते हैं तब उसकी माँ भी एक वेश बदल लेगी तो क्या अन्तर आ जायेगा ? पुरुष वेश में चलूँगी। शस्त्रों से सुसज्जित योद्धा के रूप में।

भोज : धन्य हो माँ !

बुद्धिसागर : हमारे विरोध-पत्र का भी वहाँ से कोई उत्तर नहीं आया देव !

भोज : सब उत्तर अब एक साथ ही चलकर ले लिये जायेंगे।

धनपाल : राजाधिराज मैं भी आपके साथ युद्ध में चलूँगा।

भोज : अवश्य महाकवि ! तुम्हारी सम्मति की प्रतिक्षण हमें आवश्यकता पड़ेगी !

बुद्धिसागर : मेरे लिए क्या आज्ञा है स्वामी !

भोज : (नेपथ्य की ओर इशारा करके) इन अभिनेताओं को सहस्र-सहस्र स्वर्ण-मुद्रायें हमारी ओर से पुरस्कार के रूप में दो।

बुद्धिसागर : जो आज्ञा ! किन्तु मैं युद्ध-क्षेत्र में आपके साथ चलने की बात कर रहा था।

भोज : आप यहीं रहेंगे। युद्ध-क्षेत्र में कुलचन्द्र और धनपाल के अतिरिक्त बड़े अधिकारियों में से और कोई मेरे साथ

नहीं जायेगा !

कुलचन्द्र : यहाँ आपका रहना परमावश्यक है । देश में युद्ध की घोषणा करदी जाये ! प्रत्येक प्रान्त के क्षत्रपों को आदेश भेजे जायें कि वह अपने-अपने सीमान्तों की रक्षा के लिए प्रस्तुत रहें ! हमारे कोकण पर आक्रमण करने से कोई दूसरा पड़ौसी नरेश अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा न करे ।

भोज : अब समझे ! इसीलिए आपका यहाँ रहना आवश्यक है । हाँ, यदि किसी सीमाप्रदेश पर आवश्यकता पड़ जाये, तो आप तब अपना उत्तरदायित्व शेख को सौंपकर जा सकते हैं ।

कुलचन्द्र : आप बुद्धि के सागर हैं । स्वयं उचित-अनुचित का निर्णय उस समय कीजियेगा !

भोज : चलिए शेष विचार-विमर्श परिषद् में किया जायेगा । **(इधर-उधर देखकर)** कवि भास्कर कहाँ है ?

धनपाल : वह अभी तो पृथ्वीवल्लभ रुज्ज के रूप में यहाँ अभिनय कर रहे थे । नेपथ्य मे होंगे !

कुलचन्द्र : फिर मे भास्कर बन रहे होंगे !

भोज : आओ चलें ! बुद्धिसागर, आप भास्कर को यह सूचित कर दें कि वह राज्य-परिषद् में पहुँचें !

धनपाल : **(कुसुमवती से)** राजमाता ! अब तो आप यह नहीं कह सकती कि धार विलासियों की नगरी है !

कुसुमवती : नहीं महाकवि ! आपकी लेखनी चमत्कारिणी है । जब तक वह आपके हाथ में है तब तक आप से सब कुछ सम्भव है !

कुलचन्द्र : राजमाता यह भूल जाती हैं कि परम भट्टारक शैव हैं ।

देवाधिदेवशिव के उपासक ! युद्ध, प्रणय, ज्ञान, योग, वैराग्य सभी में एक जैसा रस लेनेवाले ! अपने प्रभु के पद-चिन्हों पर चलनेवाले !

भोज : आओ ! इस व्यर्थ की प्रशंसा के लिए बहुत जीवन पड़ा है। (**जनता की ओर देखकर**) आओ देवि ज्योत्स्ना ! तुम अपने स्थान से हिली भी नहीं ! जड़वत् बैठी क्या सोच रही हो ?

ज्योत्स्ना : (**आते हुए**) मैं महाकवि की लेखनी का चमत्कार देख-कर विस्मय-विमुग्ध थी। धन्य हो, महाकवि धन्य हो ! मालवदेश सदैव आप पर गौरव करेगा !

भोज : यह तो निश्चित ही है। आओ चलें।

[**सब मंच से बाहर जाते हैं**]

तीसरा दृश्य

[**स्थान—अन्तःपुर का एक कक्ष। ज्योत्स्ना वातायन से बाहर की ओर झाँक रही है, पास ही नर्तकी विजया खड़ी है। नेपथ्य में रणवाद्य बज रहे हैं। सेना के चलने की ध्वनि सुनाई दे रही है। सैनिक युद्ध-गीत गाते जा रहे हैं।**]

सहगान

विजय-पर्व आया नवल हर्ष छाया।
हम दीवाने चले देश की लाज बचाने को।
हम मस्ताने चले शत्रु का गर्व मिटाने को॥

अपना उज्ज्वल ध्वज नभ के अन्तर में फहराया।
विजय पर्व आया॥

× × ×

आज क्रान्ति के दूत बने हम, क्रान्ति मचायेंगे।
विजयी बनकर लौटेंगे, या फिर मर जायेंगे॥
क्रान्ति-गीत हमने नूतन उल्लास सहित गाया।
विजय-पर्व आया॥

× × ×

बढ़ चल सैनिक देश धर्म के रक्षक बलधारी।
तेरी गति के आगे तूफानों की गति हारी॥
तुझे बना, निज रचना पर स्रष्टा था मुस्काया।
विजय-पर्व आया, नवल हर्ष छाया॥

[धीरे-धीरे युद्ध-गान दूर हो जाता है]

ज्योत्स्ना : देख रही हो विजया, कितना चित्ताकर्षक दृश्य है। किस तरह देश के अनन्य पुजारी, हंसते-हंसते मातृ-भूमि की रक्षा के लिए प्राण-दान करने जा रहे हैं।

विजया : वह देखो देवि! राजाधिराज हंस की तरह श्वेत अश्व पर चढ़कर आ रहे हैं! इस समय यह साक्षात् देवेन्द्र इन्द्र लग रहे हैं। कामदेव को भी लज्जित करने वाली छवि के स्वामी हैं हमारे सम्राट, देवि वह देखो महाराज आपकी ओर देख रहे हैं।

ज्योत्स्ना : मुझे देख उनके मुख पर स्मिति की रेखा खिच गई है।

विजया : आपके पूर्व-जन्म के पुण्य बहुत ही अधिक संचित थे जिनके कारण परम भट्टारक यशस्वी भोजदेव जैसे पति आपको मिले।

ज्योत्स्ना : वास्तव में ही सखि विजया, तू सच कहती है ! क्या कभी मुझे कल्पना मे भी विचार हो सकता था कि मैं इस जन्म में मालव देश की महारानी बनूँगी ! किन्तु विधि के लेख को कौन पढ़ सकता है !

विजया : वह राजमाता गज पर जा रही हैं।

ज्योत्स्ना : आज राजमाता के उल्लास की सीमा नहीं है। (**बाहर की ओर देखती हुई**) विजया ! महाकवि धनपाल को देखा ! रथ मे बैठे हुए कितने शोभित हो रहे है !

विजया : शुभ्रवसन, श्वेत दाढ़ी श्वेत केश ! इन्हें देख महारथी पितामह भीष्म, या आचार्य द्रोण की स्मृति हो आती है।

ज्योत्स्ना : (**परिहास करती हुई**) तुम्हारे वह नहीं दीखे !

विजया : मेरे वह कौन देवि !

ज्योत्स्ना : अच्छा जी ! अब इतना मत बनो ! मैं सब बातें जानती हूँ ! अब तो समझ गई होंगी !

विजया : मैं आपका इंगित नहीं पा रही महादेवी ! रहस्यमयी भाषा को छोड़ स्पष्ट कहिए, आपका अभिप्राय किस से है ?

ज्योत्स्ना : रहस्यमयी भाषा का आनन्द अपना ही होता है । मैं सेनापति कुलचन्द्र के विषय में कह रही थी !

[**विजया नाम सुनते ही लज्जा से सिर झुका लेती है**]

ज्योत्स्ना : (**छेड़कर**) क्यों नाम सुनते ही दौड़ गई न कपोलों पर लाली ! हाँ. मैं पूछ रही थी ! वह अभी तक नही आये।

विजया : (**लजाकर**) वह तो सेना के आगे-आगे चल रहे थे ! आप तब तक आई नही थीं !

ज्योत्स्ना : मुझे महाराज को पुष्पमाला पहनाकर आने में कुछ देर लग गई। किन्तु तुमने तो अपने उनको जाते हुए देख ही लिया ! (हँसकर) वह भी प्रतापी अर्जुन की तरह शोभित हो रहे होंगे ! क्यों ?

विजया : निश्चित देवि ! श्याम अश्व पर बैठे वह बहुत ही शोभित हो रहे थे।

ज्योत्स्ना : सखि ! कब तक हृदय में प्रणय की पीर पालती रहोगी ! विवाह क्यों नहीं कर लेतीं ?

विजया : (ठंडी साँस छोड़कर चुप रहती है)

ज्योत्स्ना : क्यों, चुप क्यों हो ?

विजया : (उच्छवास भरकर) मैं राजनर्तकी हूँ देवि ज्योत्सना ! मुझे राजाज्ञा के बिना विवाह करने का अधिकार नहीं है।

ज्योत्स्ना : तब फिर तू निश्चिन्त रह विजया, तेरे शुभ दिन आ गये हैं।

विजया : वह कैसे महारानी ?

ज्योत्स्ना : निश्चय ही इस युद्ध में महाराज विजयी होंगे। विजयोपरान्त सैनिकों और सेनपों को पुरस्कार भी अवश्य ही मिलेगा ! (मुस्कराती है)

विजया : मैं आपकी बात का मर्म नहीं समझ पा रही देवि !

ज्योत्स्ना : मैं महाराज से कहूँगी ! सेनापति कलचन्द्र को विजयोपहार के रूप विजया मिलेगी।

विजया : (उल्लास से) सखि ! महारानी !

ज्योत्स्ना : हाँ, निश्चिन्त रह, मैं वचन देती हूँ। आओ, तनिक उपवन में चलकर घूमें !

[दोनों बाहर जाती हैं। रंगमंच पर क्षीण अन्धकार ! तत्पश्चात् दूसरी ओर से विजया, ज्योत्स्ना

और भास्कर बातें करते हुए आते हैं।]

ज्योत्स्ना : महाराज का कोई समाचार आया !

भास्कर : अभी नहीं महारानी ! आज दो दिन ही तो उन लोगों को गये हुए हुए हैं। तीन-चार दिन तक कोई समाचार आयेगा !

ज्योत्स्ना : विवाहोपरान्त प्रथम बार मैं महाराज से अलग हुई हूँ। मुझे यह दिन बड़े विचित्र-से लग रहे हैं।

विनया : (व्यंग्य से) प्रिय वियोग से यही होता है !

ज्योत्स्ना : (हँसकर) अनुभव की बात कह रही हो ! क्यों कवि क्या आपका भी यही मत है !

भास्कर : मेरा इस विषय में अपना कोई मत नहीं है देवि !

ज्योत्स्ना : कोई हृदय तुम्हारी प्रतीक्षा में अपना जीवन बिता रहा है—इस बात को कभी मत भूलना कवि ! और वह सम्भवतः जीवन भर तुम्हारी ही प्रतीक्षा करेगा !

भास्कर : जानता हूं देवि, अनुभव करता हूँ ! अपनी भूल के ऊपर पछता भी रहा हूं ! महाराज ने भी बात की थी ! उनके यहाँ आने के पश्चात् ही···

ज्योत्स्ना : मेरी सखि यहाँ आजायेगी ! यही कहना चाहते हो न कवि !

भास्कर : (लजाकर) हाँ देवि, विश्वास तो यही है !

ज्योत्स्ना : चलो शुभ है ! महामात्य कहाँ हैं ?

भास्कर : वह बहुत ही व्यस्त हैं देवि ! राज्य का समस्त कार्य-भार उन्हीं पर आ पड़ा है ! एक क्षण का भी तो अवकाश नहीं मिल रहा है उन्हें। वैसे आज कह रहे थे समय मिला तो महारानी को प्रणाम करने जाऊँगा !

[तभी प्रतिहारी का प्रवेश]

तिहारी : महारानी की जय हो ! महामात्य आये ह !

ज्योत्स्ना : आदरसहित बुला लाओ !

[प्रतिहारी का प्रस्थान]

विजया : स्मरण कहते ही आ गये !

[तभी बुद्धिसागर आते है। मुख पर चिन्ता के भाव व्यक्त हो रहे है]

ज्योत्स्ना : आओ महामात्य ! क्या बात है, मुख पर चिन्ता की रेखायें क्यों !

भास्कर : विस्मय की बात है !

बुद्धिसागर : बुद्धिसागर की बुद्धि की कठिन परीक्षा का समय आ उपस्थित हुआ है देवि ! कुछ समझ मे नही आ रहा। मै तुम्हें ही ढूँढता फिर रहा हूँ मित्र ?

भास्कर : देवि विजया, क्षमा करें। मै इन दोनों से कुछ विशेष बातें करना चाहता हूँ

विजया : जो आज्ञा ! (कहकर जाती है)

भास्कर : आज्ञा करिये महामात्य, मेरे योग्य क्या सेवा है ?

ज्योत्स्ना : बतलाओ महामात्य ! शीघ्र बतलाओ ! इतने चिन्तित होने की कौन सी बात है ?

बुद्धिसागर : चित्तौड़ के क्षत्रप उदयादित्य का दूत अभी उनका सन्देश व पत्र लेकर आया है। उसे पढ़कर मै विचित्र स्थिति मे उलझ गया हूँ !

ज्योत्स्ना : क्या लिखते है ?

बुद्धिसागर : गुजरात-नरेश अपार सेना लेकर हम पर आक्रमण करने का विचार बना रहे है।

भास्कर : किन्तु गुजरात की ओर से हमारे गुप्तचरों ने इस प्रकार

का कोई सन्देश नहीं भेजा।

बुद्धिसागर : हो सकता है वह बन्दी बना लिये गये हों! (सोचते हुए) दामोदर महता के एकाएक चले जाने का रहस्य अब मेरी समझ में आ रहा है, हो सकता है कलचुरि नरेश से उनकी कोई सन्धि हो गई हो दोनों मिलकर-यहाँ आक्रमण करें (रुककर) अभी स्थिति का अध्ययन कर रहा हूँ।

ज्योत्स्ना : महाराज को समाचार भेज दिया?

बुद्धिसागर : नहीं देवि! वहाँ समाचार भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं उन्हें इधर की चिन्ता में डालकर कोकण-विजय को पराजय के रूप में परिवर्तित नहीं करूँगा।

भास्कर : फिर क्षत्रप उदयादित्य को क्या उत्तर देंगे?

बुद्धिसागर : वह तो मैंने सब योजना अपने मस्तिष्क में निश्चित कर ली है।

बुद्धिसागर : महाराज को यह समाचार कोकण-विजय के उपरान्त ही मिलना चाहिए! तुम्हें चित्तौड़ जाना होगा कवि भास्कर! क्योंकि तुम कवि के साथ अनुभवी योद्धा भी हो।

भास्कर : मैं वहाँ जाकर क्या कहूँगा महामात्य?

बुद्धिसागर : तुम चित्तौड़ में क्षत्रप का कार्य सँभालोगे! क्षत्रप उदयादित्य सीमा पर मेरे साथ रहेंगे। मैं अपार सेना के साथ कल ही यहाँ से प्रस्थान करूँगा। उदयादित्य भी वहाँ आ जायेंगे।

ज्योत्स्ना : राजधानी का क्या होगा?

बुद्धिसागर : चिन्तित न हों देवि! विश्वस्त व्यक्तियों पर कार्य भार छोड़कर जाऊँगा। आजकल भोजपाल के क्षत्रप सुमन्त-सेन यहाँ आये हुए हैं। वह और रोहक यहाँ का देख-

भाल करेंगे। भीमसेन भोजपाल के क्षत्रप का कार्य भी देखेंगे। सब सीमाओं के कोट्टपालों को सन्देश भिजवा दिए हैं। कोई चिन्ता की बात नहीं है।

भास्कर : धन्य है महामात्य! आपकी प्रखर बुद्धि पर बलिहार होना पड़ता है!

बुद्धिसागर : (हँसता है) अच्छा चलो, मेरे साथ चलने को तत्पर हो जाओ। (**सोचता हुआ**) हाँ! स्मरण आया। देवि, मैं एक पत्र दे आऊँगा। सम्राट के आने पर उन्हें दे दीजियेगा। मैं यहाँ से वणिक-वेश में निकलूँगा। सेना लेकर भास्कर चलेगा। बस किसी को भी यह ज्ञात नहीं होना चाहिए कि मैं राजधानी से बाहर हूँ। मैं कुछ अस्वस्थ हूँ। यह बात प्रचारित कर दी जायेगी, और इसी से अपना काम बन जायेगा। आओ भास्कर! शीघ्र ही मेरे साथ आओ। जय शिव महारानी!

ज्योत्स्ना : जय शिव!

[**भास्कर और बुद्धिसागर जाते हैं।**]

ज्योत्स्ना : राजनीति! तुझे मेरे सहस्रों प्रणाम!

[**कहती हुई दूसरी ओर बाहर जाती है।**]

[**परदा गिरता है।**]

चौथा दृश्य

[**स्थान—राजधानी से बाहर रंगशाला ही की तरह का रंगमंच बना हुआ है। नेपथ्य में विजय के बाजे बज रहे हैं। महाराज भोजदेव के जयकारों से आकाश गूँज रहा है। तभी ज्योत्स्ना और विजया रंगमंच पर आती हैं। दोनों के हाथ में पुष्पमालायें हैं।**]

विजया : शिव की कृपा से यह उल्लास का दिन भी आया महादेवी ! कोंकण-विजय करके महाराज सकुशल लौट रहे हैं।

ज्योत्स्ना : शिव के अनन्य उपासक है वह ! भोजसर पर उस ब्राह्मण ने सत्य ही कहा था।

विजया : क्या कहा था सखि ?

ज्योत्स्ना : यही कि महाराज ने भगवान शिव की उदारता और वीरता ग्रहण करनी है !

विजया : **(कछ सोचती हुई)** क्या महामात्य इतने अधिक अस्वस्थ है देवि कि वह महाराज के स्वागतार्थ भी नहीं आ सकते ?

ज्योत्स्ना : हाँ !

विजया : उनकी अस्वस्थता भी राज्य के लिए चिन्ता का विषय बनती जा रही है। समझ में नही आता, वह किसी से मिलते क्यों नहीं ?

ज्योत्स्ना : राजवैद्य की ओर से उन्हे बातें करने की मनाही है। राजवैद्य की आज्ञा के कारण ही वहाँ कोई नही जा सकता।

विजया : जनता उन्हे प्यार करती है देवि ! मन्दिरों में जा-जाकर उनके स्वास्थ्य के लिए मंगल कामना करती है।

[तभी नपथ्य मे शोर बढ़ता है। महाराज की जय के नारे निकट आते हैं। कुछ देर बाद ही महाराज रंगमंच पर प्रवेश करते है। पीछे-पीछे राजमाता, धनपाल, कुलचन्द्र, रोहक और गोविन्द भट्ट है। ज्योत्स्ना और विजया महाराज के गले मे पुष्पमालाये डालती है।]

भोज : और सुनाओ महादेवी प्रसन्न तो रही !

ज्योत्स्ना : आपकी कृपा रही देव ! आप सुनाइए युद्ध-यात्रा कैसी रही ?

भोज : भीषण युद्ध हुआ, कई दिन दोनों ओर की सेनायें एक-दूसरी से उलझा रही। उधर से स्वयं जयसिंह सेनानी का कार्य कर रहे थे।

कुसुमवती : पर अन्तिम दिन भोज साक्षात इन्द्र की तरह शत्रु-सेना पर वज्र-प्रहार करने लगे। कोकण वाले उस प्रबल आक्रमण को नहीं सँभाल पाये। जयसिंह युद्ध में मारे गये, जयश्री हमारे हाथ रही। और हमने कोकण की राजधानी में जाकर विजय के नगाड़े बजाये।

धनपाल : देवि ! वह दृश्य दर्शनीय था। कोंकणवालों को सम्बोधित करते हुए महाराज ने सिंह-गर्जना की। पृथ्वीवल्लभ मुञ्ज की मृत्यु का प्रतिशोध लेकर उन्हें बतलाया !

कुलचन्द्र : बाद में उन लोगों पर कृपा करते हुए उनके युवराज को राजगद्दी सौंपकर हम लोग लौटे ! पथ में स्थान-स्थान पर स्वागत-समारोह होते आ रहे हैं।

धनपाल : प्रजावत्सल नरेश पर प्रजा अपने स्नेह-पुष्प बिखेर रही थी। (**इधर-उधर देखकर**) महामात्य के न होने से यहाँ का स्वागत-समारोह कुछ शुष्क-सा लग रहा है।

भोज : मैं अधिक देर यहाँ ठहरना नहीं चाहता। मैं चलकर उन्हें देखना चाहता हूँ।

ज्योत्स्ना : (**पत्र देती हुई**) यह पत्र उन्होंने आपको देने के लिए दिया है।

[**महाराज पत्र लेकर पढ़ते हैं। मुख के भाव बदलते जा रहे हैं।**]

भोज : (**आवेश में आ जाते हैं**) नीतिज्ञ बुद्धिसागर की जय हो !

सेनापति कुलचन्द्र !

कुलचन्द्र : आज्ञा देव !

भोज : सेनाओं को प्रस्थान की आज्ञा दो ! हम एक क्षण भी विश्राम नहीं करना चाहते। अभी इसी क्षण गुजरात के सीमान्त की ओर जाना चाहते हैं। हमारे और तुम्हारे अतिरिक्त शेष लोग यहीं रहेंगे। **(ऊँचे स्वर में)** जय शिव !

[सब विस्मित होकर एक-दूसरे का मुख देखते हैं]

भोज : युद्ध के वाद्ययंत्र बजने का आदेश दो !

[तभी सैनिक के रूप में भास्कर का प्रवेश। वह पथ की धूल और थकान से थके हुए दीख रहे हैं।]

भास्कर : राजाधिराज की जय हो !

भोज : (आश्चर्य से) कौन भास्कर तुम ! वहाँ के क्या समाचार हैं ?

भास्कर : सब कुछ शुभ है देव ! मुझे महामात्य ने इसीलिए भेजा है कि कहीं आप उधर चल ही न दें। आपके अब वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। संकट टल गया। मैं बिना कहीं विश्राम किये दिन-रात अश्व को दौड़ाता हुआ आ रहा हूँ।

धनपाल : यह क्या रहस्य है ! क्या महामात्य अस्वस्थ नहीं हैं !

भोज : एक क्षण रुको महाकवि! हाँ आगे बात बताओ भास्कर !

भास्कर : पता लगा है कि भीमदेव लौट गया है। उसे पथ में ही सूचना मिल गई थी कि असख्य मालव सेना उसका पथ रोके पड़ी है ! वह घबरा गया !

भोज : हमें पहले ज्ञात हो जाता तो हम कोंकण-विजय बाद

में कर लेते और भीमदेव की इच्छा की पूर्ति करते। (अवकाश) महामात्य कब तक लौट आयेंगे भास्कर !

भास्कर : वहाँ का सब प्रबन्ध ठीक-ठाक करके ही लौटेंगे। दस-पन्द्रह दिन तो लग ही जायेंगे।

भोज : ठीक है, महामात्य के लौटने पर ही कोंकण-विजय-पर्व मनाया जायगा। रोहक ! उस दिन हम ब्राह्मणों को भूमि दान करेंगे। दान-पत्र बनवाओ !

रोहक : जो आज्ञा देव !

गोविन्द : देव ! अब नगर की ओर भी प्रस्थान करें। जनता अधीरता से आपका पथ जोह रही है।

ज्योत्स्ना : गृहों की छतों पर लोग चढ़े हुए हैं। मार्ग के दोनों ओर अपार भीड़ खड़ी है।

रोहक : आज रात्रि को नगर-चौक में जनता लोक-नृत्य और गीतों द्वारा अपने सम्राट् का मनोरंजन करना चाहती है।

भोज : (हँसते हैं) बहुत सुन्दर ! किन्तु राजमाता कहती हैं कि कला से विकास की भावना को बल मिलता है (**कुसुमवती की ओर देखकर**) जनता का स्वागत स्वीकार करने के लिए क्या आज्ञा है राजमाता ?

कुसुमवती : (**हँसकर**) बात करने से मत चूकना कभी भी। कला कला है पुत्र! यह कलाकार की इच्छा पर है कि उसका उपयोग कहाँ करें। धनपाल ने अच्छा प्रयोग किया, अच्छा फल मिला।

धनपाल : हमारे महाराज वीर हैं राजमाता ! इनके लिए कला या बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता नहीं थी वह तो···

भोज : राजमाता समझती थीं—मैं उनकी आज्ञा की अवज्ञा करूँगा ! एतदर्थ उस नाटक की रचना हुई ?

कुपुमवती : सब ठीक हुआ पुत्र ! मेरे हृदय को शान्ति मिली। अब मैं ऋषि के आश्रम में सुख शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करूँगी !

भोज : और अपने प्रारम्भ किए हुए निर्माण-कार्य को पूर्ण करने मे लगूँगा ? मैं फिर अपने शब्दों को दुहराना चाहता हूँ। युद्ध से देश के निर्माण को बाधा आती है !

गोविन्द : (विनम्रता) देव ! राजधानी की जनता

भोज : (बात काटकर) हाँ अवश्य ! आओ अब नगर की ओर चले ।

[नेपथ्य मे भोजदेव की जय के नारे]

[पटाक्षेप]

हमारा रोचक नाट्य-साहित्य

विषपान	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२)
स्वप्न-भंग	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१॥)
उद्धार	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२)
शपथ	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२॥)
छाया	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१)
शतरंज के खिलाड़ी	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१॥)
समर्पण	जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'	१॥।)
शक-विजय	उदयशंकर भट्ट	१॥।)
विश्वामित्र और दो भाव-नाटय	उदयशंकर भट्ट	३)
उर्मिला	पृथ्वीनाथ शर्मा	१)
सुभद्रा-परिणय	वीरेन्द्रकुमार गुप्त	२)
शक्ति-पूजा	वी० मुखर्जी 'गुंजन'	१।)
शान्ति-दूत	देवदत्त 'अटल'	१।)
मानव प्रताप	देवराज 'दिनेश'	२)
यशस्वी भोज	देवराज 'दिनेश'	१॥)
हर्षवर्धन	बैकुंठनाथ दुग्गल	१।)
रेडियो-नाटक	हरिश्चन्द्र खन्ना	६)
पग-ध्वनि	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	१॥)
वितस्ता की लहरें	लक्ष्मीनारायण मिश्र	१॥)
समाज के स्तम्भ (इब्सन)	सीताचरण दीक्षित	२)
आनन्द का राज-पथ	सीताचरण दीक्षित	२)
अ-पूर्व बंगाल	बी० वी० वरेरकर	१।)
रेल के डिब्बे	अरुण, एम. ए.	२)
बादलों के पार	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	३)
आदिम-युग	उदयशंकर भट्ट	४)
मनु तथा अन्य एकांकी	लक्ष्मीनारायण मिश्र	२॥)
गधे	हबीब तनवीर	१।)
गार्गी के बाल-नाटक	परितोष गार्गी	१।)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६